दंसणमूलो धम्मो

आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

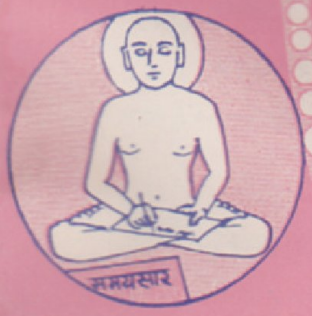

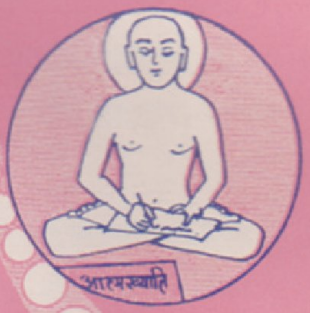

संजमु पंचेंदिय दंडणेण।
संजमुजि कसाय विहंडणेण॥
संजमु दुद्धर तव धारणेण।
संजमु रसचाय वियारणेण॥

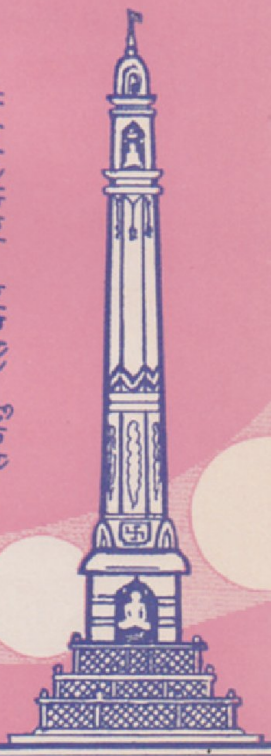

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

आत्मधर्म [३८९]

[शाश्वत सुख का मार्गदर्शक आध्यात्मिक हिन्दी मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

क्या

१ अबके ऐसी दिवाली मनाऊँ

२ आयु कर्म

३ संपादकीय : उत्तम संयम

४ सुख तो आत्मा का स्वभाव है

५ नवतत्त्व की संतति को छोड़....
[समयसार प्रवचन]

६ नहीं होत अरहंत के.....
[नियमसार प्रवचन]

७ द्रव्यसंग्रह प्रवचन

८ ज्ञान-गोष्ठी

९ समाचार दर्शन

१० पाठकों के पत्र

११ प्रबंध संपादक की कलम से

पंचेन्द्रियों के जीतने से, कषायों के नाश से, दुर्द्धर तप धारण करने से एवं षट्रस के त्याग से उत्तम संयमधर्म होता है।

- महाकवि रइधू

[मूल छंद मुखपृष्ठ पर दिया गया है]

आ त्म ध र्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

अबके ऐसी दिवाली मनाऊँ, कबहूँ फेर न दुखड़ा पाऊँ॥अबके०॥

आन कुदेव कुरीति छाँड़ के, श्री महावीर चितारुँ।
राग-द्वेष का मैल जलाकर, उज्जल ज्योति जगाऊँ॥
अपनी मुक्ति-तिया हर्षाऊँ॥१॥

निज अनुभूति महालक्ष्मी का, वास हृदय करवाऊँ।
निजगुण लाभ दोष टोटे का, लेखा ठीक लगाऊँ॥
जासो फेर न टोटा पाऊँ॥२॥

ज्ञान रतन के दीप में, तप का तेल पवित्र भराऊँ।
अनुभव ज्योति जगा के, मिथ्या अंधकार बिनसाऊँ॥
जासों शिव की गैल निहारूँ॥३॥

अष्ट करम का फोड़ फटाका, विजयी जिन कहलाऊँ।
शुद्ध बुद्ध सुखकंद मनोहर, शील स्वभाव लखाऊँ॥
जासों शिवगोरी बिलसाऊँ॥४॥

आयु कर्म

आचार्यकल्प पंडितप्रवर टोडरमलजी ने ग्रंथराज मोक्षमार्गप्रकाशक (पृष्ठ ६१) में 'आयु कर्म' की वस्तुस्थिति का विशद विवेचन किया है; वह जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ यहाँ दिया जा रहा है :—

तथा आयुकर्म के निमित्त से पर्याय का धारण करना सो जीवितव्य है और पर्याय का छूटना सो मरण है। यह जीव मिथ्यादर्शनादिक से पर्याय ही को अपनेरूप अनुभव करता है; इसलिए जीवितव्य रहने पर अपना अस्तित्व मानता है और मरण होने पर अपना अभाव होना मानता है। इसी कारण से इसे सदाकाल मरण का भय रहता है, उस भय से सदा आकुलता रहती है। जिनको मरण का कारण जाने उनसे बहुत डरता है, कदाचित् उनका संयोग बने तो महाविह्वल हो जाता है।—इसप्रकार महा दु:खी रहता है।

उसका उपाय यह करता है कि मरण के कारणों को दूर रखता है अथवा स्वयं उनसे भागता है। तथा औषधादिक साधन करता है, किला, कोट आदि बनाता है–इत्यादि उपाय करता है, सो ये उपाय झूठे हैं; क्योंकि आयु पूर्ण होने पर तो अनेक उपाय करे, अनेक सहायक हों तथापि मरण हो ही जाता है, एक समयमात्र भी जीवित नहीं रहता। और जब तक आयु पूर्ण न हो तब तक अनेक कारण मिलो, सर्वथा मरण नहीं होता। इसलिये उपाय करने से मरण मिटता नहीं है; तथा आयु की स्थिति पूर्ण होती ही है, इसलिये मरण भी होता ही है। इसका उपाय करना झूठा ही है।

तो सच्चा उपाय क्या है? सम्यग्दर्शनादिक से पर्याय में अहंबुद्धि छूट जाये, स्वयं अनादिनिधन चैतन्यद्रव्य है, उसमें अहंबुद्धि आये, पर्याय को स्वांग समान जाने; तब मरण का भय नहीं रहता। तथा सम्यग्दर्शनादिक से ही सिद्धपद प्राप्त करे तब मरण का अभाव ही होता है। इसलिये सम्यग्दर्शनादिक ही सच्चे उपाय हैं।

सम्पादकीय

उत्तम संयम | एक विश्लेषण

'संयमनं संयमः। अथवा व्रतसमितिकषायदण्डेन्द्रियाणां धारणानुपाननिग्रह-त्यागजयाः संयमः'।[१]

संयमन को संयम कहते हैं; संयमन अर्थात् उपयोग को परपदार्थ से समेट कर आत्मसन्मुख करना, अपने में सीमित करना, अपने में लगाना। उपयोग की स्वसन्मुखता, स्वलीनता ही निश्चय संयम है। अथवा पाँच व्रतों का धारण करना, पाँच समितियों का पालन करना, क्रोधादि कषायों का निग्रह करना, मन-वचन-कायरूप तीन दंडों का त्याग करना और पाँच इंद्रियों के विषयों को जीतना संयम है।

संयम के साथ लगा 'उत्तम' शब्द सम्यग्दर्शन की सत्ता का सूचक है। जिसप्रकार बीज के बिना वृक्ष की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और फलागम संभव नहीं है; उसीप्रकार सम्यग्दर्शन के बिना संयम की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि एवं फलागम संभव नहीं है।

इस संदर्भ में महान दिग्गज आचार्य वीरसेन स्वामी लिखते हैं :—

'सो संजमो जो सम्माविणाभावी ण अण्णो'।[२]

संयम वही है, जो सम्यक्त्व का अविनाभावी हो, अन्य नहीं।

इसी बात को 'धवला, प्रथम पुस्तक' में इसप्रकार प्रश्नोत्तर के रूप में दिया गया है :—

प्रश्न – कितने ही मिथ्यादृष्टि संयत (संयमी) देखे जाते हैं ?

उत्तर – नहीं; क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना संयम की उत्पत्ति ही नहीं हो सकती।[३]

संयम मुक्ति का साक्षात् कारण है। दुःखों से छूटने का एकमात्र उपाय सम्यग्दर्शन

१– धवला पुस्तक १, खंड १, भाग १, सूत्र ४, पृष्ठ १४४

२– धवला पुस्तक १२, खंड ४, भाग २, सूत्र १७७, पृष्ठ ८१

३– धवला पुस्तक १, खंड १, भाग १, सूत्र १३, पृष्ठ ३७८

सहित संयम अर्थात् उत्तम संयम ही है। बिना संयम धारण किये तीर्थंकरों को भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता। कहा भी है :—

जिस बिना नहीं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जग कीच में।
इक घरी मत विसरो करो नित, आयु जम मुख बीच में॥[1]

निरंतर मौत की आशंका से घिरे मानव को कवि प्रेरणा दे रहे हैं कि संयम को एक घड़ी के लिये भी मत भूलो [संयम विणु घड़ि एक्कु न जाइ], क्योंकि यह सारा जगत संयम के बिना ही इस संसार की कीचड़ में फँसा हुआ है। संसार-सागर से पार उतारनेवाला एक मात्र संयम ही है।

संयम एक बहुमूल्य रत्न है। इसे लूटने के लिये पंचेन्द्रिय के विषय-कषायरूपी चोर निरंतर चारों ओर चक्कर लगा रहे हैं। अत: कवि सचेत करते हुए कहते हैं :—

संयम रतन संभाल, विषय चोर चहुँ फिरत हैं।[2]

आगे कहते हैं :—

उत्तम संजम गहु मन मेरे, भव-भव के भाजैं अघ तेरे।
सुरग नरक पशुगति में नाहीं, आलस हरन करन सुख ठाहीं॥[3]

यहाँ अपने मन को समझाते हुए कहा गया है कि हे मन! उत्तम संयम को धारण कर; इससे तेरे भव-भव के बंधे पाप भाग जावेंगे, कट जावेंगे। यह संयम स्वर्गों और नरकों में तो है ही नहीं, अपितु पूर्ण संयम तो तिर्यंच गति में भी नहीं है। एकमात्र मनुष्य भव ही ऐसा है जिसमें संयम धारण किया जा सकता है।

मनुष्य जन्म की सार्थकता संयम धारण करने में ही है। कहते हैं देव भी इस संयम के लिये तरसते हैं। जिस संयम के लिये देवता भी तरसते हों और जिस बिना तीर्थंकर भी न तिरें, वह संयम कैसा होगा? इस पर हमें गंभीरता से विचार करना चाहिये। उसे मात्र दो-चार दिन भूखे रहने एवं सिर मुंडन करा लेने मात्र तक सीमित नहीं किया जा सकता।

संयम दो प्रकार का होता है :— (१) प्राणीसंयम और (२) इंद्रियसंयम।

छहकाय के जीवों के घात एवं घात के भावों के त्याग को प्राणीसंयम और पंचेन्द्रियों तथा मन के विषयों के त्याग को इंद्रियसंयम कहते हैं।

१- दशलक्षणधर्म पूजन, संयम संबंधी छंद २- वही ३- वही

षट्काय के जीवों की रक्षारूप अहिंसा एवं पंचेन्द्रियों के विषयों के त्यागरूप व्रतों की बात जब भी चलती है-हमारा ध्यान परजीवों के द्रव्यप्राणरूप घात एवं बाह्य भोगप्रवृत्ति के त्याग की ओर ही जाता है। अभिप्राय में जो वासना बनी रहती है, उसकी ओर ध्यान ही नहीं जाता। इस संदर्भ में महापंडित टोडरमलजी लिखते हैं :—

"बाह्य त्रस-स्थावर की हिंसा तथा इंद्रिय-मन के विषयों में प्रवृत्ति उसको अविरति जानता है। हिंसा में प्रमाद परिणति मूल है और विषय सेवन में अभिलाषा मूल है, उसका अवलोकन नहीं करता। तथा बाह्य क्रोधादि करना उसको कषाय जानता है, अभिप्राय में राग-द्वेष बस रहे हैं, उनको नहीं पहिचानता।"[१]

यदि बाह्य हिंसा का त्याग एवं इंद्रियों के विषयों की प्रवृत्ति नहीं होने का ही नाम संयम है, तो फिर देवगति में भी संयम होना चाहिये; क्योंकि सोलह स्वर्गों के ऊपर तो उक्त बातों की प्रवृत्ति संयमी पुरुषों से भी कम पायी जाती है।

सर्वार्थसिद्धि के सम्यग्दृष्टि अहमिंद्रों के पंचेन्द्रियों के विषयों की प्रवृत्ति बहुत कम या न के बराबर-सी पायी जाती है। स्पर्शनेन्द्रिय के विषय सेवन (मैथुन) की प्रवृत्ति तो दूर, तेतीस सागर तक उनके मन में विषय सेवन का विकल्प भी नहीं उठता। तत्त्वार्थसूत्र के अध्याय ४ के सूत्र ९ में सर्व मान्य आचार्य उमास्वामी ने स्पष्ट लिखा है :— 'परेऽप्रवीचाराः' सोलह स्वर्गों के ऊपर प्रवीचार का भाव भी नहीं होता।

रसना इंद्रिय के विषय में भी उन्हें तेतीस हजार वर्ष तक कुछ भी खाने-पीने का भाव नहीं आता। तेतीस हजार वर्ष के बाद भी जब विकल्प उठता है तो गले से ही अमृत झर जाता है, जबान जूठी तब भी नहीं होती। इसीप्रकार घ्राण, चक्षु, कर्ण, इंद्रियों के विषयों का भी अभाव-सा ही पाया जाता है। उन्हें जिनेन्द्र पंचकल्याणक को देखने, दिव्यध्वनि सुनने तक का भाव नहीं आता।

षट्काय के जीवों की हिंसा का भी प्रसंग वहाँ नहीं है। कषाय भी सदा मंद, मंदतर, और मंदतम रहती है—क्योंकि उनके शुक्ल लेश्या होती है। पाँचों पापों की प्रवृत्ति भी नहीं देखी जाती। यह सब बातें जिनवाणी में यत्र-तत्र-सर्वत्र देखी जा सकती है। कुछ कम-बढ़ इसीप्रकार की स्थिति नवग्रैवेयक के मिथ्यादृष्टि अहमिन्द्रों के भी पायी जाती है।

१- मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ २२७

जहाँ एक ओर अहमिन्द्रों के बाह्यरूप से षट्काय के जीवों की हिंसा, पंचेन्द्रिय के विषयों, कषायों और पाँचों पापों की प्रवृत्ति नहीं होने पर या कम से कम होने पर भी शास्त्रकार लिखते हैं कि—उनके संयम नहीं है, वे असंयमी हैं; वहीं दूसरी ओर अणुव्रती मनुष्य श्रावक के लिये देशसंयमी ही सही, पर संयमी कहा गया है –जबकि उसके अहमिन्द्रों की अपेक्षा हिंसा, पंचेन्द्रिय के विषयों, कषायों एवं पापों में प्रवृत्ति अधिक देखी जाती है।

यद्यपि अणुव्रती के त्रसहिंसा का त्याग होता है; तथापि उद्योगी, आरंभी एवं विरोधी त्रसहिंसा से वह भी नहीं बच पाता है। प्रयोजनभूत स्थावरहिंसा तो होती ही है।

पंचेन्द्रियों के विषयों की दृष्टि से विचार करें तो स्पर्शन इंद्रिय के संदर्भ में यद्यपि वह परस्त्रीसेवन का सर्वथा त्यागी होता है तथापि स्वस्त्रीसेवन तो उसके पाया ही जाता है; जबकि अहमिन्द्रों के स्त्रीसेवन का मन में विकल्प भी नहीं उठता। इसीप्रकार रसनेन्द्रिय के विषय में विचार करें तो न सही अभक्ष्य भक्षण एवं खाने-पीने की लोलुपता; पर खाता-पीता तो है ही। भले ही शुद्ध खान-पान ही सही; पर स्वाद तो लेता ही होगा। अहमन्द्रिों के तो हजारों वर्ष तक भोजन ही नहीं, स्वाद की तो बात ही दूर है। घ्राण, चक्षु और कर्ण के विषय में भी यही स्थिति है। फिर भी अणुव्रती मनुष्यों को संयमी कहा है।

यदि विषयों की बाह्य प्रवृत्ति के त्याग का नाम ही संयम होता तो फिर वह देवों में अवश्य होना चाहिये था और मनुष्य एवं तिर्युचों में उसकी संभावना कम होनी चाहिये थी। किंतु शास्त्रों के अनुसार संयम देवों में नहीं, मनुष्यों में है। इससे सिद्ध होता है कि संयम मात्र बाह्य प्रवृत्ति का नाम नहीं – बल्कि उस पवित्र आन्तरिक वृत्ति का नाम है जो मानवों में पायी जा सकती है; देवों में नहीं, चाहे उनकी बाह्यवृत्ति कितनी ही ठीक क्यों न हो।

वस्तुतः संयम सम्यग्दर्शनपूर्वक आत्मा के आश्रय से उत्पन्न हुई उस परम पवित्र वीतराग परिणति का नाम है—जो कि छठे-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले या उससे आगे बढ़े हुए मुनिराजों के अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण कषाय के अभाव में प्राप्त होती है; तथा जो पंचमगुणस्थानवर्ती मनुष्य और तिर्यंचों में भी अनंतानुबंधी व अप्रत्याख्यान कषाय के अभाव में पायी जाती है। तथा अनंतानुबंधी आदि कषायों के सद्भाव में ग्रैवेयक तक के मिथ्यादृष्टि अहमिन्द्रों एवं अप्रत्याख्यानावरणादि कषायों के सद्भाव में सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्रों में नहीं पायी जाती है।

सम्यग्दर्शनपूर्वक आत्मा के आश्रय से उत्पन्न हुई अनंतानुबंधी आदि तीन या दो कषायों के अभाव में प्रकट वीतराग परिणतिरूप उत्तमसंयम जब अंतर में प्रकट होता है, तब उस जीव की बाह्य परिणति भी पंचेन्द्रियों के विषयों एवं हिंसादि पापों के सर्वदेश या एकदेश त्यागरूप नियम से होती है; उसे व्यवहार से उत्तम संयमधर्म कहते हैं। अंतरंग में उक्त वीतराग परिणति के अभाव में–चाहे जैसा बाह्य त्याग दिखायी दे; वह व्यवहार से भी उत्तम संयमधर्म नहीं है।

अंतरंग से बहिरंग की व्याप्ति तो नियम से होती है, पर बहिरंग के साथ अंतरंग की व्याप्ति का कोई नियम नहीं है। तात्पर्य यह है कि जिसके अंतर्गत अर्थात् निश्चय उत्तम संयमधर्म प्रकट होता है, उसका बाह्य व्यवहार भी नियमरूप से तद्नुकूल होगा। किंतु यदि बाह्य व्यवहार ठीक भी दिखाई दे तो भी कोई गारंटी नहीं कि उसका अंतरंग भी पवित्र होगा ही।

उत्तम संयमधर्म में छहकाय के जीवों की रक्षा एवं पंचेन्द्रिय और मन को वश में करने की बात कही गयी है :—'काय छहों प्रतिपाल, पंचेन्द्रिय मन वश करो।'

किंतु सामान्यजन इसका भी सही भाव नहीं समझ पाते।

छहकाय के जीवों की रक्षा में उनका ध्यान परजीवों की रक्षा की ओर ही जाता है। 'मैं स्वयं भी एक जीव हूँ' इसका उन्हें ध्यान ही नहीं रहता। परजीवों की रक्षा का भाव करके सब जीवों ने पुण्यबंध तो अनेक बार किया। किंतु परलक्ष्य से निरंतर अपने शुद्धोपयोगरूप भावप्राणों का जो घात हो रहा है, उसकी ओर इनका ध्यान ही नहीं जाता। मिथ्यात्व और कषायभावों से यह जीव निरंतर अपघात कर रहा है। इस महाहिंसा की इसे खबर ही नहीं है।

हिंसा की परिभाषा में ही 'प्रमत्तयोगात्'[१] शब्द पड़ा है – जिसका तात्पर्य ही यह है कि प्रमाद अर्थात् कषाय के योग से अपने और पराये प्राणों का व्यपरोपण हिंसा ही है। इसे ही आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी ने 'हिंसा में प्रमाद परिणति मूल है' कहा है। जब तक प्रमाद (कषाय) परिणति है तब तक हिंसा अवश्य है चाह परप्राणों का घात हो या न भी हो। इस संदर्भ में विशेष जानने के लिये लेखक का 'अहिंसा'[२] संबंधी लेख देखना चाहिये। प्रकृत में विस्तृत विवेचन संभव नहीं है।

[उत्तरार्द्ध अगले अंक में]

१– प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा। तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय ७, सूत्र १३

सुख आत्मा का स्वभाव है

छहढाला पर हुए पूज्य स्वामीजी के प्रवचन, 'वीतराग-विज्ञान' नाम से प्रकाशित हुए हैं। उनमें से तीसरी ढाल पर हुए प्रवचनों का महत्त्वपूर्ण अंश यहाँ दिया जा रहा है।

सुख आत्मा का स्वभाव है; राग आत्मा का स्वभाव नहीं है; अतः राग आत्मा के सुख का कारण नहीं हो सकता। सुख जिसका स्वभाव है, उसको जानने से, अनुभव में लेने से ही सुख होता है। जीव सुख चाहते हैं, परंतु अपने सुख स्वभाव को भूलकर वह राग में या संयोग में सुख शोधते हैं। अरे भाई! सुख राग में होता है कि वीतरागता में? वीतरागता ही सुख है, उसको जीव ने कभी नहीं जाना। जिसने राग में या पुण्य में सुख माना उसको मोक्ष की श्रद्धा नहीं है। इसलिये कहा कि सुख तो आकुलता रहित है और ऐसे सुख के लिये शिवमार्ग में लगे रहना चाहिये। आत्मा के ऐसे अतीन्द्रिय सुख को धर्मी जीव ही जानते हैं; और स्व-पर के भेद ज्ञानपूर्वक वीतराग-विज्ञान से ही वह सुख अनुभव में आता है।

पहली ढाल में चार गति के दुःख दिखाये; दूसरी ढाल में उन दुःख के कारणरूप मिथ्यात्वादि को छोड़कर आत्महित के पथ में लगने के लिये कहा; अब इस तीसरी ढाल में आत्महित का उपाय दिखाते हैं। पूर्वाचार्यों के कथन का सार लेकर पंडितजी ने इस छहढाला रूपी गागर में सागर भर दिया है; संस्कृत-व्याकरण आदि न आते हों तो भी जिज्ञासु जीव समझ सकें, ऐसी सुगम शैली से हिन्दी भाषा में प्रयोजनभूत कथन किया है।

आत्मा का कल्याण कहो, हित कहो या सच्चा सुख कहो; सब एक ही है। जिस भाव से अतीन्द्रिय सुख हो वही आत्महित है; इसके बिना और कहीं भी शरीर में, धन में या प्रतिष्ठा आदि में सुख नहीं है। उनके लक्ष्य में तो आकुलता है, परंतु अज्ञानी उनमें सुख मानते हैं। पुण्य बाँधने के भाव में आकुलता है और उस पुण्य के फल भोगने में भी आकुलता है; सुख उसमें कहीं भी नहीं है। बाह्य विषयों के बिना आत्मा स्वयं सुखस्वरूप है। ऐसे चैतन्यस्वरूप आत्मा के अनुभव में जो वीतरागी निराकुलता है, वही सच्चा सुख है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप

वीतराग विज्ञान के बिना ऐसा सुख किसी को नहीं होता। धर्मी जीव को इन्द्रपद के वैभव में भी प्रसन्नता नहीं; चैतन्य के आनंद में ही प्रसन्नता है।

सुख अर्थात् निराकुलता; अतीन्द्रिय आनंद का बड़ा पुंज आत्मा है। सुख अपने अंतर में है, परंतु उसको भूलकर बाहर में सुख मानकर जीव हैरान हो रहा है। अरे जीव! तू बाहर में से सुख लेना चाहता है, परंतु तेरे ही अंदर में आत्मा का जो सच्चा सुख है उसको तू भूल रहा है—अरे! यह बात तू जरा लक्ष्य में तो ले। मेरा सुख मेरे आत्मा में ही है—ऐसा लक्ष्य करते ही बाह्य विषयों में से (अशुभ में से एवं शुभ में से) सुख लेने की बुद्धि नहीं रहती, और परिणति अंतर में आत्मसन्मुख होकर अतीन्द्रिय सुख अनुभव में आता है; ऐसा सुख वही सच्चा सुख है। बाहर में सुख दिखता है वह तो अज्ञानी की मात्र कल्पना ही है, मृगमरीचिका में जल जैसी वह कल्पना मिथ्या है।

जैसे हिरण मृगमरीचिका को पानी समझकर उसे पीने को दौड़ता है... बहुत दौड़ता है तो भी उसे पानी नहीं मिलता। कहाँ से मिले? वहाँ पानी हो तब मिले न? वहाँ पानी है ही नहीं, वहाँ तो गरमागरम रेत है। अरे मृग! बहुत दूर-दूर तक दौड़ने पर भी पानी की शीतल हवा भी तुझे न मिली। तब तू सोच तो सही कि तेरे को जो दिख रहा है, वह सचमुच में पानी नहीं है; परंतु तेरी कल्पना ही है, दृष्टिभ्रम है। परंतु मृग-जल के पीछे वेग से दौड़नेवाले मृग को इतना विचार करने का अवकाश ही कहाँ है? उसीप्रकार मृग-जल जैसे विषयों की ओर झंझावात करनेवाले प्राणियों को इतना विचार भी नहीं आता कि अरे! अनादिकाल से अशुभ एवं शुभ विषयों के पीछे दौड़ते हुए भी मुझे जरा सा भी सुख क्यों न मिला? सुख की शीतल हवा भी क्यों न आयी? कहाँ से आवे? उसमें सुख हो तब आये न? विषयों के सेवन में तो गरम रेत जैसी आकुलता ही है; उसमें जो सुख दिखता है, वह तो अज्ञानी की दृष्टि का भ्रम ही है।

बाह्य में अनुकूलता का होना सो सुख और प्रतिकूलता का होना सो दुःख—ऐसा नहीं है; धनवान सुखी और निर्धन दुःखी ऐसा भी नहीं है; निरोगता में सुख और रोग में दुःख ऐसा भी नहीं है। बाहर की दरिद्रता में न दुःख है और न लाखों-अरबों रुपयों के ढ़ेर में सुख है। उन दोनों ओर के झुकाव में आकुलता से जीव दुःखी है। चैतन्य प्रभु आत्मा ही एक ऐसा है कि जिसमें देखते ही सुख हो। आत्मा ही सुख का भंडार है, परंतु उसकी पहचान नहीं है। सुख तो

आत्मा का अपना निज वैभव है, जड़ वैभव में वह नहीं होता।

भाई! तुम्हें सुखी होना है न?—हाँ; तो सुख कैसा होता है और उसकी प्राप्ति कैसे होती है यह पहचानना चाहिये। आत्मा का जो सहज स्वभाव है, उसके बीच में यदि राग की आड़ न लगावे तो तेरा आत्मा स्वयमेव निराकुल सुखरूप से अनुभव में आयेगा। निराकुलता है वह सुख है; और वह आत्मा की मुक्तदशा है। अतः सुख के अभिलाषी को मोक्ष के मार्ग में लगना चाहिये। मोक्षमार्ग अर्थात् रागरहित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। मोक्ष निराकुल है और उसका मार्ग भी निराकुल है; राग में तो आकुलता है, दुःख है।

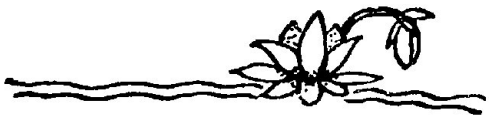

नये प्रकाशन

श्रीमद् नेमीचंद्र सिद्धांतदेव विरचित

वृहद् द्रव्यसंग्रह

[श्री ब्रह्मदेव विरचित संस्कृत वृत्ति सहित]

सजिल्द मूल्य : आठ रुपये मात्र

श्रीमद् आचार्यवर अमृतचंद्रदेव विरचित

समयसार कलश

प्लास्टिक कवर सहित मूल्य : सात रुपये पचास पैसे

सादा : छह रुपये पचास पैसे

नवतत्त्व की संतति को छोड़ हमें एक आत्मा ही प्राप्त हो

परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द के सर्वोत्तम ग्रंथराज समयसार की अमृतचंद्राचार्यकृत आत्मख्याति टीका के बीच-बीच में अनेक महत्त्वपूर्ण छंद आये हैं, जिन्हें कलश कहते हैं। गाथा ११-१२ की टीका में समागत कलश नं० ६ व ७ पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

अब यथार्थ सम्यग्दर्शन का स्वरूप कहते हैं—

एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः
पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यांतरेभ्यः पृथक्।
सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयं
तन्मुक्त्वा नवतत्त्वसंततिमिमामात्मामेकोस्तु नः ॥६॥

इस आत्मा को अन्य द्रव्यों से पृथक् देखना (श्रद्धान करना) ही नियम से सम्यग्दर्शन है। यह आत्मा अपने गुण-पर्यायों में व्याप्त रहनेवाला है और शुद्धनय से एकत्व में निश्चित किया गया है तथा पूर्ण ज्ञानघन है एवं जितना सम्यग्दर्शन है उतना ही आत्मा है। इसलिये आचार्य प्रार्थना करते हैं कि 'इस नवतत्त्व की परिपाटी को छोड़कर, यह आत्मा एक ही हमें प्राप्त हो।'

इस आत्मा को देव-गुरु-शास्त्र, शरीर, कर्म आदि परद्रव्यों से पृथक् देखना सम्यग्दर्शन है। पर से पृथक् होना नहीं पड़ता, परिपूर्ण शुद्ध ज्ञानघन में एकाग्र होने पर, पर से पृथक्ता अनुभव में आती है; यही सम्यग्दर्शन है।

वर्तमान श्रद्धापर्याय को स्वभाव-सन्मुख करना अर्थात् पर्याय का द्रव्य के साथ एकमेक होना निश्चय सम्यग्दर्शन है। कुछ लोग कहते हैं कि चौथे गुणस्थान में सराग सम्यक्त्व होता है और निश्चय सम्यग्दर्शन तो सातवें गुणस्थान में होता है, परंतु यह यथार्थ नहीं है।

यहाँ आत्मा को देखना कहा है, जिसका अर्थ श्रद्धा करना समझना चाहिये। [इस विषय पर आत्मधर्म अंक ३८० में 'सराग और वीतराग सम्यक्त्व' शीर्षक प्रवचन में विशेष स्पष्टीकरण हुआ है।]

पर्याय, सामान्यस्वभाव में झुके तो निश्चय सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन शुभराग के ही अभावपूर्वक होता है। अशुभ के अभाव से सीधे सम्यग्दर्शन नहीं होता।

कैसा है आत्मा? पर से पृथक् और अपने में व्याप्त है। शरीर और रागादि में अव्याप्त है। ज्ञान-दर्शन-आनंद से पूर्ण, त्रिकाल एकरूप ध्रुव, अपने गुणरूप रहकर उनकी अवस्थाओं में व्यापक रहनेवाला है।

और कैसा है आत्मा? शुद्धनय से एकत्व में निश्चित किया गया है। पर से पृथक्ता कहकर अब स्व से एकत्व कहते हैं। पृथक्त्व और एकत्व में कालभेद नहीं, किंतु कथन में क्रमभेद पड़ता है। शुद्धनय द्वारा तत्त्व के नव भेदों में से अखंड एक ज्ञायकस्वरूप आत्मा को लक्ष्य में लेकर अपने त्रिकाली ध्रुवपने में निश्चित किया गया है। गुण तो अनंत हैं, पर अखंड की श्रद्धा में भेद-विकल्प छूट जाते हैं।

और कैसा है आत्मा? ज्ञान से भरा हुआ है। जैसे, नमक खारापन से भरा है; उसीप्रकार आत्मा ज्ञान से परिपूर्ण, आनंद का कंद है। ज्ञानानंदघन आत्मा में पुण्य-पाप की वृत्तियाँ प्रविष्ट नहीं हो सकतीं। त्रिकाली एकरूप द्रव्यस्वभाव में परमार्थ से विकार के कर्तृत्व का लेशमात्र भी अवकाश नहीं है।

जितना सम्यग्दर्शन है उतना ही आत्मा है। सम्यग्दर्शन ने संपूर्ण आत्मा को पकड़ा है, कुछ भी बाकी नहीं रहा। सम्यग्दर्शन-पर्याय का क्षेत्र भी आत्मा जितना है; परंतु यहाँ क्षेत्र की नहीं, भाव की बात है। सम्यग्दर्शन स्वयं एकसमय की पर्याय है, परंतु उसका विषय अनंत गुणों का पिंड परिपूर्ण आत्मा है। सब कुछ प्रतीति में लिया है, कुछ भी बाकी नहीं रहा। सम्यग्दर्शन उत्पादरूप पर्याय है; पर उसका विषय उत्पादरूप नहीं, उसका विषय तो संपूर्ण आत्मा है।

कोई कहे कि सम्यग्दर्शन एक समय की पर्याय है और आत्मा तो त्रिकाली द्रव्य है तो सम्यग्दर्शन जितना आत्मा क्यों कहा? भाई! यहाँ काल की बात नहीं, सम्यग्दर्शन का विषय परिपूर्ण चिदानंदघन आत्मा है - ऐसा यहाँ कहना है।

आचार्यदेव प्रार्थना करते हैं कि नव तत्त्व की परिपाटी को छोड़ यह एक आत्मा ही हमें प्राप्त हो। यह जीव है, यह अजीव है, यह संवर है, इत्यादि भेद के लक्ष्य से राग उत्पन्न होता है; अतः नव तत्त्व की परिपाटी को छोड़ना कहा है।

यहाँ जो नव तत्त्व की परिपाटी कही है और तत्त्वार्थसूत्र में जो सात तत्त्वों की श्रद्धा कही है, दोनों भिन्न-भिन्न हैं। वहाँ सात तत्त्वों के भावभासन को सम्यग्दर्शन कहा है। ज्ञान करनेवाला जीव है, उससे विलक्षण अजीव है, आदि सात तत्त्वों का भावभासन होना तत्त्वार्थ श्रद्धान है, वह बात यहाँ नहीं है। यहाँ परिपाटी का अर्थ है नव तत्त्वों का रागसहित विचार करना। अत: आचार्य कहते हैं कि नव तत्त्व की परिपाटी छोड़कर हमें आत्मा एक ही प्राप्त हो।

परिपाटी को छोड़ना भी नास्ति का कथन है। स्वभाव में एकाग्र होने पर नव तत्त्व के विकल्प छूट जाते हैं। एक आत्मा की श्रद्धा निश्चय सम्यग्दर्शन है। नव तत्त्वों की भेदरूप श्रद्धा व्यवहार सम्यग्दर्शन है। इसलिये कहा है कि यह नव तत्त्व की परिपाटी छोड़कर हमें यह आत्मा एक ही प्राप्त हो।

सर्व स्वाभाविक दशाओं तथा निमित्त के लक्ष्य से अपने में होनेवाली विकारी दशा में व्याप्त होनेवाला आत्मा है। स्वभाव-सम्मुख होकर आत्मा को ज्ञायकमात्र देखा गया। शुद्धनय से एकत्व में निश्चित किया गया अर्थात् स्वभाव में एकाग्र हुआ। शुद्धनय की पर्याय भिन्न नहीं रह जाती। शुद्धनय और उसके विषय में कालभेद नहीं, एक ही समय है। स्वयं अपने को जाननेवाला है। ज्ञायकमात्र एक आकार दिखाया गया है।

यहाँ सम्यग्दर्शन की विधि बताते हैं। सर्व अन्य द्रव्य और उनके भावों से भिन्न अपने आत्मा को देखना नियम से सम्यग्दर्शन है। थोड़ा समझना पर यथार्थ समझना, तीन काल तीन लोक में न फिरे ऐसा समझना चाहिये। आत्म-प्रतीति न हो तो शास्त्र-वाचन यथार्थ नहीं।

व्यवहारनय आत्मा को अनेक भेदरूप कहकर सम्यग्दर्शन को अनेक भेदरूप कहता है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नव तत्त्व की श्रद्धा आदि अनेक भेद व्यवहार कहता है; इसलिये नव तत्त्व की श्रद्धा निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं। नव भेद करके विचारने पर एक आत्मा अनेकरूप ज्ञात होता है; अत: दोष आता है, नियम नहीं रहता। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नव तत्त्व की श्रद्धा आदि अनेक भेद पड़ने से नियम नहीं रहता। मैं जीव हूँ, यह अजीव है, इत्यादि व्यवहार-विकल्पों से अनेकता आती है।

सम्यग्दर्शन आत्मा का परिणाम है, गुण नहीं। वह कोई आत्मा से भिन्न पदार्थ नहीं। पर्याय और द्रव्य अभेद हैं; अत: सम्यग्दर्शन आत्मा ही है, अन्य नहीं।

यहाँ इतना समझना कि नय श्रुतप्रमाण का अंश है। प्रमाण का भेद होने से शुद्धनय भी श्रुतप्रमाण का अंश है। आत्मा में त्रिकाल टिकनेवाले ज्ञायक एकरूप भाव को देखना निश्चयनय है और वर्तमान अवस्था को देखना व्यवहारनय है। एक अंश का ज्ञान वह नयज्ञान है तथा त्रिकाली अखंड स्वरूप और वर्तमान अवस्था दोनों पक्षों का अखंड वस्तुरूप ज्ञान करना प्रमाणज्ञान है।

श्रुतज्ञान परोक्षप्रमाण है, क्योंकि वस्तु को सर्वज्ञ के आगम के वचन से जाना है। श्रुतप्रमाण में असंख्य प्रदेश प्रत्यक्ष नहीं दिखते, अतः वह परोक्ष है। परोक्ष अर्थात् झूठा नहीं; परोक्षप्रमाण भी सत्य है, सम्यग्ज्ञान का भेद है। अनंत गुण और अनंत पर्यायें श्रुतज्ञान में प्रत्यक्ष नहीं दिखतीं, अतः परोक्ष हैं। जिसप्रकार पर में सुख की कल्पना स्वयं अंतर से की है, पर में सुख देखकर नहीं। वह अरूपीभाव आँख से नहीं दिखता, फिर भी अनादि से उसका ऐसा दृढ़ विश्वास और अभ्यास है कि उसमें शंका नहीं करता। इस पर-सम्मुख दृष्टि को स्व-सम्मुख करे तो स्वयं आत्मा निर्णय कर सकता है। सराग अवस्था में आत्मा को परोक्ष श्रुतप्रमाण से जैसा जानता है, वैसा ही आत्मा केवलज्ञान में प्रत्यक्ष ज्ञात होता है।

अंधा मनुष्य आँख से शक्कर नहीं देख सकता, परंतु जैसा स्वाद देखनेवाला मनुष्य लेता है वैसा ही स्वाद अंधा मनुष्य भी ले सकता है। उसीप्रकार वर्तमान में जीव अनंत-शक्तिस्वरूप आत्मा का स्वसंवेदन-ज्ञान कर सकता है। यथार्थ श्रद्धा के समय जब बुद्धिपूर्वक विकल्परहित स्व में एकाग्रता होती है तब और उसके बाद जब-जब ऐसे अनुभव में ठहरे तब-तब केवलज्ञान में पूर्ण आनंद के स्वाद की जाति के आनंद का आंशिक स्वाद श्रुतज्ञान उपयोग के समय आता है।

श्रुतज्ञान में आत्मा प्रत्यक्ष नहीं दिखता, परंतु वह प्रत्यक्ष का कारण है। शुद्धनय पूर्ण केवलज्ञान स्वरूप को प्रत्यक्ष दिखाता है। पहले परोक्ष भान न करे तो प्रत्यक्ष भान भी नहीं होता। जो प्रत्यक्ष दिखे उसी को मानना- ऐसा कहनेवाले नास्तिक हैं, अनुभव से तो प्रत्यक्ष है। उसीप्रकार ज्ञानी तो कहते हैं-परंतु साक्षात् प्रत्यक्ष हो तभी मानेंगे - ऐसा कहनेवाले नास्तिक हैं; क्योंकि पूर्ण प्रत्यक्ष होने के बाद क्या मानना शेष रह गया?

नव तत्त्व का भेद छोड़कर एक आत्मा ही हमें प्राप्त हो इसका यह अर्थ नहीं कि जगत में

एक आत्मा ही है। नव तत्त्व हैं अवश्य। नव तत्त्व हैं, निश्चय-व्यवहार है, सामान्य-विशेष है; इन सबका ज्ञान करके नव तत्त्व का लक्ष्य छोड़ एक आत्मा को मुख्य करने के लिये कहते हैं। क्योंकि जब तक केवल व्यवहारनय के विषयभूत नव तत्त्व के विचारों में जीव रुका रहे, एक ज्ञायक तरफ न झुके, तब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता।

पूर्ण स्वभाव की यथार्थ श्रद्धा के बाद भी नव तत्त्व के विचारों की शुभवृत्ति उठती है, पर अंतर से उसका आदर नहीं होता। नव तत्त्वों की परिपाटी छोड़कर शुद्धनय का विषयभूत एक आत्मा ही हमें प्राप्त हो, हम दूसरा कुछ नहीं चाहते, यह वीतराग अवस्था की प्रार्थना है, कोई नयपक्ष नहीं। यदि सर्वथा नयों का पक्षपात रहे तो मिथ्यात्व ही है। शुद्ध स्वभाव की दृष्टि होने के बाद नव तत्त्वों का यथार्थ ज्ञान रहता है।

अब टीकाकार आचार्यदेव कहते हैं कि - शुद्धनय के आधीन सर्वद्रव्यों से भिन्न आत्म-ज्योति प्रगट हो जाती है :-

अतः शुद्धनयात्यत्तं प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति तत्।
नव तत्त्वगतत्वेपि यदेकत्वं न मुंचति॥७॥

तत्पश्चात् शुद्धनय के आधीन जो भिन्न आत्मज्योति है, वह प्रगट होती है - जो नव तत्त्वों में प्राप्त होने पर भी अपने एकत्व को नहीं छोड़ती।

आत्मज्योति को शुद्धनय के आधीन कहा है, व्यवहारनय के आधीन नहीं - यह भाव इसमें गर्भित है। सम्यग्दर्शन-चारित्र, केवलज्ञान और सिद्धदशा सभी शुद्धनय के आधीन हैं, क्योंकि शुद्धनय का विषय सभी परद्रव्यों और पर-नैमित्तिक विकारी भावों से भिन्न तथा मन के विकल्पों से भी पार ऐसी चैतन्य चमत्कार मात्र आत्मज्योति है। वर्तमान अवस्था में नव तत्त्वों के विकल्पों में व्यवहार से अटकने पर भी, अनेकरूप दिखते हुए भी, शुद्धनय से देखने पर अपने एकरूप ध्रुवस्वभाव को नहीं छोड़ती - जो कि सम्यग्दर्शन का विषय है।

नहीं होत अरहंत के ये अष्टादश दोष

परमपूज्य दिगम्बर आचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की छठवीं गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है :—

छुहतण्हभीरुरोसो रागो मोहो चिंता जरा रुजा मिच्चू।
सेदं खेद मदो रइ विम्हियणिद्दा जणुव्वेगो ॥६॥

क्षुधा, तृषा, भय, रोष, राग, मोह, चिंता, जरा, रोग, मृत्यु, स्वेद, खेद, मद, रति, विस्मय, निद्रा, जन्म और उद्वेग–ये अठारह दोष हैं। ये अठारह दोष अरहंत भगवान के नहीं होते।

(१) **क्षुधा** – अरहंत परमात्मा के क्षुधा नहीं होती तथा आहार भी नहीं होता। अष्ट वर्ष की उम्र में सर्वज्ञता प्रकट हो, तत्पश्चात् करोड़ों वर्षों तक शरीर–स्थिति रहे तो भी भूख नहीं लगती। जिनको एक समय में तीन काल तीन लोक के जानने का ज्ञान–सामर्थ्य प्रकट हुआ उनको क्षुधा नहीं लगती, उनका शरीर आहार के बिना ही परमौदारिक स्फटिक जैसा टिका रहता है।

(२) **तृषा** – अरहन्त परमात्मा के पानी पीने की इच्छा नहीं होती। तृषा भी नहीं होती और पानी भी नहीं पीते। महावीर परमात्मा इस समय सिद्धदशा में हैं, किंतु ढाई हजार वर्ष पहले वे यहीं अरहन्त रूप में विराजमान थे। और इस समय भी महाविदेह क्षेत्र में सीमंधर परमात्मा अरहन्त रूप में विराजमान हैं। लाखों वर्ष पहले उनको केवलज्ञान हुआ है, परंतु क्षुधा–तृषा उनको नहीं होती। भोजन–पान के बिना लाखों–करोड़ों वर्षों तक उनका शरीर ज्यों का त्यों टिका रहेगा।

(३) **भय** – सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान में तीन काल–तीन लोक ज्ञात हो गये हैं, अतः उन्हें भय किसका?

(४) **रोष** – रोष अर्थात् क्रोध भी सर्वज्ञ भगवान के नहीं होता।

(५) **राग** – भगवान के राग नहीं होता तथा उपदेश करने की इच्छा भी नहीं होती। हाँ, सहजरूप से वाणी खिरती है, परंतु इच्छा का अभाव है। विहार भी सहज ही होता है। विहार करूँ; ऐसी रागयुक्त इच्छा नहीं, क्योंकि राग का अभाव तो बारहवें गुणस्थान में ही हो चुका है।

(६) **मोह** – भगवान के मोह नहीं होता, क्योंकि मोहाभाव के बाद ही तो सर्वज्ञता प्रकट हुई है।

(७) **चिंता** – भगवान के चिंता नहीं होती। जहाँ मोह सर्वथा टल गया और तीन काल, तीन लोक ज्ञान में प्रतिभासित हो गये; वहाँ चिंता किसकी हो सकती है ?

(८) **जरा** – केवलज्ञान होने के बाद लाखों-करोड़ों वर्ष तक देह टिका रहता है, तथापि वृद्धावस्था नहीं आती – शरीर के झुर्रियाँ आदि भी नहीं पड़ती।

(९) **रोग** – भगवान के शरीर में रोग नहीं होता और दवा भी नहीं होती। भगवान की आत्मा तो रोगरहित है ही तथा शरीर भी रोगरहित है।

(१०) **मृत्यु** – भगवान का शरीर त्याग होने पर मोक्ष होता है, किंतु पुनः नवीन शरीर धारण करना नहीं पड़ता अर्थात् भगवान को मृत्यु नहीं है।

(११) **स्वेद** – पसीना; भगवान इच्छारहित विहार करते हैं, उनको थकान नहीं होती, शरीर में पसीना नहीं निकलता। आत्मा में अनंतवीर्य प्रकट होने पर निमित्तरूप से शरीर में भी थकावट या पसीना नहीं होता, भगवान जमीन पर विहार न करके आकाश में विहार करते हैं।

(१२) **खेद** – भगवान को खेद नहीं होता।

(१३) **मद** – अभिमान भगवान के नहीं होता।

(१४) **रति** – अर्थात् राग-प्रीति; भगवान को किसी के भी ऊपर रति नहीं होती।

(१५) **विस्मय** – आश्चर्य; जहाँ पूर्ण ज्ञान हो गया है अर्थात् भगवान के ज्ञान में कुछ नवीन है ही नहीं तो आश्चर्य किसका ? नवीनता लगे तो आश्चर्य हो। किंतु सर्वज्ञ के ज्ञान में समस्त लोकालोक ज्ञात हों तो अब आश्चर्य किसका हो ?

(१६) **निद्रा** – त्रिकाल और त्रिलोक को जाननेवाला चैतन्यसूर्य उदय हुआ अर्थात् चैतन्य

जागृत हो गया फिर उसमें निद्रा कैसी ? अष्टम गुणस्थान से ही निद्रा का अभाव हो जाता है। स्वरूप की जागृति का भाव प्रकट होते ही प्रमादरूप निद्रा नहीं होती।

(१७) **जन्म** – भगवान दुबारा अवतार धारण नहीं करते। मुक्त होने के बाद जगत के जीवों के कल्याण के लिये अवतार धारण करें, ऐसे भगवान नहीं होते।

(१८) **उद्वेग** – भगवान के उद्वेग नहीं होता।

ऐसे अठारह दोष भगवान के नहीं होते। भगवान के गुण अग्रिम गाथा में कहेंगे।

अब टीका में अठारह दोषों का विस्तृत वर्णन करते हैं :—

(१) असातावेदनीय संबंधी तीव्र अथवा मंद क्लेश करनेवाली–वह क्षुधा है। अर्थात् विशेष प्रकार के असातावेदनीय कर्म के निमित्त से होनेवाली विशिष्ट शरीरावस्था के ऊपर लक्ष्य जाने पर मोहनीय कर्म के निमित्त से होनेवाली खाने की इच्छारूप आकुलता का नाम क्षुधा है।

आत्मा के आनंदरूप लीनता के समय क्षुधा उत्पन्न ही नहीं होती। क्षुधा में निमित्त हो, इसप्रकार का असाता कर्म भगवान के नहीं होता। यहाँ शरीर की पर्याय को क्षुधा नहीं कहा, किंतु खाने की इच्छारूप दु:ख को क्षुधा कहा है। इच्छारूप दु:ख हो तभी शरीर की क्षुधा को निमित्त कहा जाये। भगवान को भूख लगती है और वह भोजन करते हैं, ऐसा जो मानता है, उसने तो भगवान को भी साधारण मनुष्य जैसा मान लिया। खाने की इच्छा हुई उसमें तो मोहनीय कर्म निमित्त है। भगवान के शरीर में इसप्रकार की दशा नहीं होती कि क्षुधा लगे और खाने की इच्छा हो। उनके ऐसी तीव्र असाता भी नहीं और भोजन की इच्छा भी नहीं तथा बाहर में भी आहार होता नहीं।

(२) असातावेदनीय संबंधी तीव्र, तीव्रतर, मंद अथवा मंदतर पीड़ा से उत्पन्न होनेवाली—वह तृषा है। अर्थात् विशिष्ट असातावेदनीय कर्म के निमित्त से होनेवाली जो विशिष्ट शरीरावस्था उसके ऊपर लक्ष्य जाने पर मोहनीय कर्म के निमित्त से जलादि पीने की इच्छारूप दु:ख वह तृषा है। साधारण असातावेदनीय होती है, परंतु ऐसी असाता नहीं होती जिससे तृषा लगे। पानी पीने की इच्छा तो मोह है और भगवान के मोह होता नहीं, अत: तृषा भी नहीं होती। अरे ! जहाँ चैतन्य के आनंद की तृप्ति वर्त रही है वहाँ पानी की तृषा कहाँ से होगी ?

(३) **भय** - भगवान के भय नहीं होता। भगवान किसी की माला जपते नहीं तथा अस्त्र-शस्त्र भी रखते नहीं। जिसको किसी का भय होगा वही जाप जपेगा अथवा हथियार रखेगा। इस लोक का भय, परलोक का भय, अरक्षा भय, अगुप्तिभय, मरणभय, वेदनाभय, और अकस्मात भय—ये भय के सात प्रकार हैं।

ऐसे भगवान को पहचाने बिना सभी को सच्चा माने तो मूढ़ता है। सर्वज्ञ परमात्मा कैसे होते हैं और उनका कहा हुआ मार्ग कैसा होता है - यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य देव उसकी पहचान करवा रहे हैं। ऐसे भगवान को पहचानो और उनके द्वारा कथित आत्मा के धर्म को जानो।

(४) **रोष** - क्रोधी पुरुष का तीव्र परिणाम वह रोष है। भगवान के रोष नहीं होता, वे तो चैतन्य-दर्पण हो गये हैं, सबको ज्ञातापने जानते हैं। कोई जीव न माने तो उसके ऊपर रोष नहीं करते, क्योंकि क्रोध के परिणाम का उनके अत्यंत अभाव है। जो शत्रु पर क्रोध करे उसे भगवान कह सकते नहीं।

(५) **राग** - प्रशस्त और अप्रशस्त के भेद से राग दो प्रकार का है। दया, दान, शील, उपवास तथा गुरुजनों की वैयावृत्यादि में उत्पन्न होनेवाला प्रशस्त राग है। और स्त्री-संबंधी, राजा-संबंधी, चोर-संबंधी तथा भोजन-संबंधी विकथा कहने का अथवा सुनने का कौतूहल परिणाम अप्रशस्त राग है।

भगवान दान नहीं देते। दान का भाव पाप नहीं, पुण्यभाव है, प्रशस्त राग है अर्थात् शुभ भाव है। जड़ के ग्रहण-त्याग की क्रिया तो पर है; उस समय उत्पन्न होनेवाला शुभराग है, वह पुण्य है, ऐसा राग भगवान के नहीं होता। इसमें यह बात भी आ गयी कि दान-भाव भी राग है, धर्म नहीं; धर्म तो उससे भिन्न वस्तु है। रागरहित आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-रमणता वह धर्म है। धर्म व पुण्य दोनों भिन्न-भिन्न वस्तुयें हैं। दान, शील, तपादि का शुभभाव तो अनंत बार किया किंतु वह मोक्ष का कारण नहीं; उसका अभाव हो तब मोक्ष का कारण है। भगवान के उस दान इत्यादि के भाव का अभाव है।

धर्म, पुण्य और पाप—ये तीनों ही भिन्न-भिन्न वस्तुयें हैं। हिंसादि भाव तो पाप है, दया-दानादि का भाव पुण्य है, और धर्म तो अंतर की श्रद्धा-ज्ञान करके एकाग्रता करना वह है। केवली के दानादि के भाव नहीं होते, अतः ऐसे केवली भगवान की जिसे मान्यता हुई है वह

जीव दान इत्यादि के शुभभाव में धर्म नहीं मानता और यदि दानादि के शुभराग में धर्म माने तो उसने सर्वज्ञ भगवान को माना ही नहीं।

इसीप्रकार शील अर्थात् ब्रह्मचर्य आदि के शुभ भाव भी भगवान के नहीं होते। अब्रह्म का भाव तो पाप है और ब्रह्मचर्य का शुभ भाव पुण्य है; इन दोनों में से एक भी भगवान के नहीं होता। उपवास का शुभ भाव भगवान के नहीं होता। देखो! उपवास का शुभ भाव भी धर्म नहीं। मैं तप करूँ ऐसी वृत्ति अरहन्त परमात्मा के नहीं होती, वे तो वीतराग हैं और ज्ञानानंद में लीन हैं।

प्रशस्त राग में दान, शील, तप और वैयावृत्य-इन चार को मुख्य बताकर 'इत्यादि' ऐसा कह दिया है। लोग तो दान, शील इत्यादि शुभभाव में धर्म मान बैठे हैं - परंतु यहाँ तो कहते हैं कि भगवान के ऐसे भाव होते ही नहीं। अरे! जो भाव सर्वज्ञ भगवान के न हों, वे भाव तेरा धर्म कैसे हो सकते हैं? चैतन्य शुद्ध चिदानंद ज्ञाता-दृष्टा है, उसका भान किये बिना धर्म नहीं होता।

गुरुजनों की वैयावृत्य का भाव भगवान के नहीं होता, चतुर्विध संघ को भगवान नमस्कार नहीं करते और सिद्ध भगवान को नमस्कार करने की वृत्ति भी भगवान के नहीं होती। 'नमो तीथ्थस्स' ऐसा भगवान नहीं बोलते, छद्मस्थ गुरु हो उसका भी विनय भगवान नहीं करते, क्योंकि विनय-वंदना का विकल्प तो छठे गुणस्थान तक ही होता है, पश्चात् वंद्य-वंदक भाव का विकल्प ही नहीं होता तो फिर भगवान को वह भाव कहाँ से होगा? नहीं होगा। स्वयं पूर्ण परमात्मदशा को प्राप्त हो गये हैं तो फिर किसको वंदन करने का भाव हो? मुनि या केवली भगवान के प्रति विनय-बहुमान का भाव प्रशस्त राग है—वह राग भगवान के नहीं होता। राग का अभाव करके ही तो केवलज्ञान हुआ है।

भगवान के शुभराग नहीं होता यह बात पहले की। अब प्रशस्त राग भी नहीं होता है ऐसा कहते हैं। भगवान की वाणी में स्त्री की कथा आती है, परंतु भगवान तो वीतराग हैं। स्त्री, राजा, चोर तथा भोजन संबंधी बात करने में अथवा सुनने में कौतूहल परिणाम हों, वे विकथारूप परिणाम हैं—ऐसे परिणाम भगवान के नहीं होते।

(६) चार प्रकार के श्रमण संघ के प्रति वात्सल्य संबंधी मोह प्रशस्त है, इसके अतिरिक्त अन्य मोह अप्रशस्त है। श्रमण के चार प्रकार इस भाँति हैं—ऋषि, मुनि, यति तथा

अनगार। ऋद्धिप्राप्त श्रमण ऋषि हैं; अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान प्राप्त श्रमण मुनि हैं; उपशम अथवा क्षपकश्रेणी में आरूढ़ श्रमण यति हैं; और सामान्य साधु अनगार हैं।

ऐसे चार प्रकार के श्रमण संघ के प्रति वात्सल्यभाव—भक्तिभाव उत्पन्न होना प्रशस्त मोह है—ऐसा मोहभाव भगवान के नहीं होता।

सम्यग्दर्शन के आठ अंग कहे हैं, उनमें वात्सल्य भी आता है, परंतु वह तो व्यवहार की बात है। भगवान के ऐसा वात्सल्य नहीं होता। एक केवली के दूसरे केवली के प्रति वात्सलय अर्थात् प्रेम नहीं होता। वात्सल्य तो पर की तरफ का मोहयुक्त लक्ष्य है, वह आत्मस्वरूप नहीं है। संसार के कुटुंबादि के ऊपर होनेवाला प्रेमभाव अप्रशस्त मोह है—ऐसा मोह भगवान के नहीं होता। चार तीर्थ स्थापना करने का मोह भगवान के नहीं है। दिव्यध्वनि सहजपने छूटी और श्रोताओं ने अपने भावों से समझकर मुनिदशा इत्यादि प्रकट की अर्थात् स्वयं अपनी योग्यता से चारों तीर्थ स्थापित हुए – वहाँ निमित्तरूप से भगवान को तीर्थ-कर्ता कहा जाता है।

चारों प्रकार के श्रमण वीतराग साधु हैं-आत्मा के भानसहित चारित्रदशा में झूलनेवाले संत हैं। चार तीर्थ के ऊपर भगवान को मोह नहीं, उन्हें भी केवलज्ञान अपेक्षा से मुनि कहते हैं।

(७) धर्मरूप तथा शुक्लरूप चिंतन (चिंता-विचार) प्रशस्त हैं, इसके अतिरिक्त (आर्तरूप तथा रौद्ररूप चिंतन) अप्रशस्त ही हैं। यहाँ 'शुक्ल ध्यान' का अर्थ शुभ विकल्प समझना। भगवान के शुक्ल ध्यान की शुभ लगन ही नहीं होती। उनके परमानंद में लीनतारूप शुक्ल ध्यान तो होता है, परंतु उसकी चिंता अर्थात् विकल्प नहीं होता।

(८) तिर्यंचों तथा मनुष्यों के वयकृत देहविकार (वय के कारण होनेवाली शरीर की जीर्ण अवस्था)—वही जरा है। भगवान का देह भी झुर्रियों तथा वृद्धावस्थारहित होता है। साधारण जीवों को तो भगवान का देह भी पहचानना कठिन है। भगवान का शरीर भी जब ऐसा होता है तो फिर उनके आत्मा की तो बात ही क्या? आत्मा की परमात्मदशा प्रकट होने पर निमित्तरूप से शरीर भी ऐसा होता है कि उसमें वृद्धावस्था नहीं होती। लाखों-करोड़ों वर्ष रहे तो भी उसमें झुर्रियाँ आदि नहीं पड़तीं। अन्त तक शरीर जैसे का तैसा सुंदर बना रहता है।

(९) वात, पित्त और कफ की विषमता से उत्पन्न होनेवाली शरीर संबंधी पीड़ा का

होना रोग है। भगवान के तो जन्म से ही मल-मूत्र नहीं होता। तीन काल में भगवान ऐसे ही होते हैं। इस समय भी सीमंधर भगवान ऐसी दशा में महाविदेह क्षेत्र में विराजमान हैं। उनके दिव्यध्वनि खिरती है परंतु इच्छा नहीं है।

इंद्र के रोग नहीं होता और वह इंद्र जिसकी पूजा करे ऐसे भगवान परमात्मा को रोग हो, यह बात संभव नहीं। भगवान को रोग हो और वह औषध सेवन करें, यह तो तुच्छतम बात है—ऐसा भगवान का स्वरूप नहीं। जहाँ आत्मा की पूर्ण पवित्रता हो गई, वहाँ उसके साथ पुण्य का निमित्त भी ऐसा ही होता है कि रोगादि नहीं होते।

(१०) सादि-सनिधन, मूर्त्त इंद्रियोंवाला, विजातीय नरनारकादि विभावव्यंजनपर्याय का विनाश होना ही मृत्यु है।

आत्मा अनादि-अनंत है, जबकि यह शरीर तो आदि-अंतवाला है। आत्मा अमूर्त-अतीन्द्रिय है, देह तो मूर्त-इंद्रियवाला है। आत्मा चैतन्यस्वभावी है, यह शरीर उससे विजातीय है। ऐसी विभावव्यंजनपर्याय का जो विनाश है, उसे मरण कहते हैं। एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करता है, वहाँ देह का विनाश होता है, उसे मृत्यु कहते हैं। परंतु भगवान तो देह छूटने पर मुक्त सिद्धपरमात्मा हो जाते हैं इसलिये उसे मृत्यु नहीं कहते। लोगों की देह छूटे उसे मृत्यु कहते हैं और सर्वज्ञ परमात्मा की देह छूटे उसे मुक्ति कहते हैं। भगवान के मृत्यु नहीं होती।

ऐसे दोषरहित भगवान को पहचानना चाहिये। ऐसे भगवान की श्रद्धा—वह तो व्यवहार सम्यक्त्व है और सर्वज्ञ कथित अपने चैतन्यस्वभाव की श्रद्धा वह परमार्थ सम्यक्त्व है।

यहाँ अरहन्त भगवान की पहचान करायी है। अरहन्त भगवान के १८ दोष नहीं होते। उन अरहन्त का द्रव्य, उनके गुण और उनकी प्रकट सर्वज्ञ परमात्मदशा को जो पहचान ले; वही आत्मा के स्वरूप को पहचान सकता है। अरहन्त का जैसा द्रव्य तथा गुण-पर्याय है वैसा ही आत्मा का परमार्थस्वरूप है। अन्य जिन रागादि भावों का उनमें अभाव है वे आत्मा का स्वरूप नहीं हैं। इसप्रकार अरहन्त जैसे अपने आत्मा की पहचान होने पर सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है।

अरहन्त भगवान के मृत्यु नहीं है, क्योंकि देह-वियोग के पश्चात् दूसरा अवतार नहीं

धारण करते। अर्थात् देह-वियोग होने पर तो उन्हें मुक्ति प्राप्ति हो जाती है, उसे मृत्यु नहीं कहते।

(११) अशुभकर्म-विपाकजनित शारीरिक श्रम से उत्पन्न जो दुर्गंध के संबंध के कारण दुर्वासित जल बिंदुओं का समूह-वह स्वेद है। भगवान के चार घातियाकर्म तो नाश हो गये हैं, अनंतवीर्य प्रकट हो गया है अर्थात् थकावट या खेद नहीं है। उनके इसप्रकार के अशुभकर्मों का संयोग ही नहीं है, जिससे पसीना निकले।

(१२) अनिष्ट की प्राप्ति अर्थात् कोई वस्तु अनिष्ट लगे—वह खेद है। ज्ञानी के किसी पदार्थ में इष्टानिष्टपने की बुद्धि नहीं है, और भगवान के तो किसी भी पदार्थ के प्रति राग-द्वेष नहीं है। उनके तो अस्थिरताजनित खेद भी नहीं है।

अरहन्त भगवान कैसे हैं—यह पहचाने बिना 'णमोअरहंताणं' ऐसा कहे अथवा 'णमों वस्त्राणं' ऐसा कहे, तो इन दोनों में अंतर ही क्या है? अरहन्त देव ही मेरे भगवान हैं, दूसरा कोई नहीं—इसका कारण क्या? लक्षण द्वारा पहचाने बिना अरहन्त का नाम ले अथवा किसी कुदेव का नाम ले तो इससे क्या? स्वयं को कुछ पहचान नहीं होने के कारण इससे कोई लाभ होनेवाला नहीं है।

अरहन्त दशा कैसी होती है? वहाँ शरीर कैसा होता है? उसकी पहचान हुए बिना, भगवान को नमस्कार किया—ऐसा नहीं कह सकते। जिनको नमस्कार करना है, उनको पहचाने बिना सच्चा नमस्कार कैसे करेगा? इसलिये सर्वप्रथम अरहन्त भगवान की पहचान करना चाहिये।

(१३) सर्व जन-मानस के कर्ण में अमृत उड़ेलनेवाले सहज चतुर कवित्व के कारण, सहज (सुंदर) शरीर के कारण, सहज (उत्तम) कुल के कारण, सहज बल के कारण तथा सहज ऐश्वर्य के कारण आत्मा में जो अहंकार की उत्पत्ति है-वह मद है।

कवित्व कैसा लिया? कि सहज हो। उत्तम कवित्वपना इत्यादि हो उससे अज्ञानी को अहंकार होता है—उसका नाम मद है। भगवान के ऐसा मद नहीं होता। भगवान का रूप सहज सुंदर होता है; इंद्र सहस्र नेत्र करके देखता है तथापि उसे तृप्ति नहीं होती-ऐसा सुंदररूप होता है, किंतु भगवान के उसका मद नहीं होता। शरीर का रूप तो जड़ की आकृति है; चौदह ब्रह्मांड में जो सुंदर रजकण थे, वे सब भगवान के शरीर रूप में परिणमित हो गये हैं, फिर भी उन्हें

अभिमान नहीं है। उत्तम कुल हो, परंतु ज्ञानी को उसका अभिमान नहीं होता—फिर वीतराग भगवान को तो अभिमान होता ही नहीं। भगवान का अवतार महाउत्तम ऐसे क्षत्रिय कुल में ही होता है, ऐसे उत्तम कुल का भी भगवान को मद नहीं होता।

भगवान का शरीर-बल अतुल होता है, सहजरूप से होता है, तथा सहज ऐश्वर्य भी होता है, और समवशरणादि विभूति होती है; किंतु उन्हें उनका मद नहीं। मद तो विकार है, दोष है; वह आत्मा का स्वरूप नहीं।

(१४) मनोज्ञ वस्तुओं में परम प्रीति—वही रति है। ऐसी रति भगवान के नहीं होती।

(१५) परम समरसीभाव की भावनारहित जीवों के (परम समताभाव के अनुभव रहित जीवों के) कभी पहले नहीं देखे होने के कारण होनेवाला भाव वह विस्मय है।

भगवान के विस्मय नहीं है, वह तो आत्मा के परम आनंद रस में लीन हैं तथा तीन काल, तीन लोक उनके ज्ञान में ज्ञात हो गये हैं; अतः उन्हें विस्मय नहीं होता, कौतूहल का भाव ही टल गया है। जिसे चैतन्य के परम समरसीभाव की भावना नहीं, उसे बाहर में कहीं नवीन पदार्थ देखने पर विस्मय होता है; परंतु भगवान को जगत में कोई पदार्थ ही अदृष्ट नहीं है, अतः उनके विस्मय नहीं होता।

(१६) केवल शुभकर्म से देव पर्याय में, केवल अशुभ कर्म से नारक पर्याय में, माया से तिर्यंच पर्याय में और शुभाशुभ मिश्रकर्म से मनुष्य पर्याय में जो उत्पत्ति है-वह जन्म है।

प्रतिदिन अरबों रुपयों का दान करे, अहिंसा पाले, ब्रह्मचर्य पाले, ऐसे अनेक प्रकार के शुभभाव करे तो उसका फल क्या होगा? उससे देवपर्याय में जन्म होगा, परंतु जिससे जन्म का नाश हो ऐसा धर्म नहीं होगा। भगवान देवलोक में जन्म धारण नहीं करते, क्योंकि उनके वैसे शुभभाव नहीं हैं।

जीव अनादि से है, उसमें आत्मभान बिना अनंत-अनंत अवतार धारण किये, उनमें शुभभाव करके अनंत बार स्वर्ग में गया। देखो! अज्ञानी कहते हैं कि शुभकर्म से धर्म होता है, किंतु यह बात असत्य है। केवल शुभकर्म से भी स्वर्ग ही मिलता है-भगवान के ऐसा अवतार नहीं होता है।

तीव्र हिंसा, चोरी इत्यादि महाअधर्मरूप पापभाव का सेवन करे, आखेट करे, माँस

भक्षण करे, तथा परदारा सेवन करे; ऐसे परिणामवाला जीव नरक में जन्म लेता है।

जो तीव्र कपट-कुटिलता-माया के परिणामों का सेवन करे, वह तिर्यंच में जन्म लेता है। कुटिलता होने के कारण उसका शरीर भी कुटिल होता है। कैसे परिणामों से कैसी गति मिलती है, यह भी पहचानना चाहिये। शुभ तथा अशुभ ऐसे मिश्रपरिणाम से जीव का मनुष्य पर्याय में अवतार होता है। इन चारों प्रकार की गतियों में जन्म लेना तो संसार है—जन्म है; ऐसी चारों गतियों में भगवान का जन्म नहीं होता, भगवान तो सिद्ध गति को प्राप्त करते हैं।

धर्मी जीव आत्मा के भानसहित एकाध भव स्वर्ग के धारण करे, तो भी वह आत्मस्वभाव की साधना करके अल्पकाल में मुक्ति-पद प्राप्त करता है, उसको फिर से अवतार नहीं होता। सिद्धपद पाने के बाद अनंत-अनंतकाल तक कभी अवतार नहीं होता।

(१७) दर्शनावरणी कर्म के उदय से, जिसमें ज्ञान-ज्योति अस्त हो जाती है; वही निद्रा है। निद्रा के समय विचार-शून्यता हो जाती है, ज्ञान-जागृति रुक जाती है। भगवान के तो केवलज्ञान ज्योति प्रकट हो गयी है, इसलिये उनके निद्रा नहीं होती।

(१८) इष्ट के वियोग में आकुलता-घबराहट होना वह उद्वेग है। भगवान के घबराहट होती ही नहीं। ज्ञानी को भी भान है कि मेरी आत्मा को कोई वस्तु प्रिय या अप्रिय नहीं है। ऐसे भानसहित चैतन्य में स्थिर होकर जहाँ वीतरागता प्रकट हुई वहाँ भगवान को उद्वेग होता ही नहीं।

उपरोक्त अठारह दोष भगवान सर्वज्ञ के नहीं होते। क्षुधा, तृषा, आहारादि सभी दोष हैं, इन दोषों से तीनों लोक व्याप्त हैं; किंतु भगवान तो इन सर्व दोषों से सर्वथा रहित हैं।

जिनेन्द्र भगवान के दर्शन-पूजन भी न करे और तू अपने को जैन कहलावे, ये तेरा जैनपना कैसा ?

जिस घर में प्रतिदिन भक्तिपूर्वक देव-गुरु के दर्शन-पूजन होते हैं, मुनिवरों आदि धर्मात्माओं को आदरपूर्वक दान दिया जाता है-वह घर धन्य है; और इसके बिना घर तो श्मशान तुल्य है।

— पूज्य कानजीस्वामी : श्रावकधर्म प्रकाश, पृष्ठ १०६

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

अणुगुरुदेहपमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा, णिच्चयणयदो असंखदेसो वा॥१०॥

व्यवहारनय से जीव संकोच और विस्तार के कारण समुद्घात अवस्था को छोड़कर छोटे और बड़े शरीर के प्रमाण में रहता है; और निश्चयनय से वह लोकाकाश जितने असंख्यात प्रदेशवाला है।

जगत में बहुत से विपरीत मत हैं। कोई कहता है कि—आत्मा सर्व व्यापक है अथवा अणुमात्र है; यह शरीर छूटते ही आत्मा किसी अनंत में मिल जाता है; सभी आत्मायें एकरूप हैं; ऐसी अनेक प्रकार से मिथ्या कल्पना करते हैं। उनके निषेध के लिये सत्य क्या है ? यह कहते हैं।

आत्मा निश्चयनय से लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेशों का धारक है। लोकाकाश के प्रदेशों की जितनी संख्या है, उतने ही असंख्यात प्रदेश प्रत्येक आत्मा के हैं। प्रत्येक जीव को स्वतंत्र स्वक्षेत्र से अखंडितपना है, और इससे प्रत्येक जीव हमेशा स्वयं के आधार से है, परक्षेत्र के आधीन नहीं है। ऐसा जानना वह सुखी होने का मार्ग अर्थात् धर्म है।

एक परमाणु जितने स्थान को रोके उतने भाग को प्रदेश कहते हैं। वैसे स्वयं, स्वयं के असंख्य प्रदेशों में व्यापक स्वयं के अनंत गुणों का पिंड एक-एक जीव है। एक-एक आत्मा को असंख्य प्रदेश हैं। एक-एक प्रदेश में जीव के अनंतगुण हैं। गुण अर्थात् त्रिकाली सामर्थ्यरूप शक्ति। असंख्य प्रदेशों में उस जीव के सभी गुण पूरे भाग में सदा व्यापक रहते हैं।

व्यवहारनय से जीव के असंख्यात प्रदेशों की छोटे-बड़े शरीर में संकोच-विस्तार होने की अनेकता है। इस अपेक्षा से वर्तमान में छोटे-बड़े आकार होने की योग्यता वह व्यवहार है और तीन काल एकरूप असंख्य प्रदेशरूप संख्या है, उसमें फेरफार नहीं होता, वह निश्चय है;

कीड़ी (चींटी) के शरीर को जीव धारण करे तब उसके प्रदेश छोटे हो जाते हैं और बड़े शरीर में विस्तृत हो जाते हैं (बढ़ जाते हैं)-ऐसा नहीं है।

प्रत्येक जीव संसार अवस्था में भी असंख्यात प्रदेशी रहता है-वह निश्चय है। लेकिन व्यवहार से समुद्घात अवस्था रहित—जैसे वस्त्र का सिकुड़ना अथवा विस्तृत होना होता है, वैसे—संकोच-विस्तार के कारण से छोटे अथवा बड़े शरीर प्रमाण से स्वयं की योग्यता को लिये रहता है। ऐसी ही वस्तुस्थिति है। शरीर प्रमाण आत्मप्रदेश हैं, उनमें सभी गुण सत् हैं। क्योंकि शरीर के किसी एक भाग में बिच्छू का डंक लगे अथवा शीत-उष्ण का स्पर्श हो तो सारे शरीर में उसका विचार आता है, ध्यान जाता है; इसलिये ज्ञान, सुख वगैरह जीव के सभी गुण जीव के समूचे भाग में अर्थात् असंख्य प्रदेशों में ही अखंड अभेदरूप से व्याप्त हो रहे हैं, रह रहे हैं। गुण नया नहीं होता, उसीप्रकार नाश नहीं होता।

'अणुगुरु देहपमाणो' निश्चय से, स्वयं की देह से भिन्न तथा केवलज्ञानादि अनंत गुणों की राशि से अभिन्न स्वयं का शुद्ध आत्मस्वरूप है। विकार, कर्म, शरीर—यह आत्मा का स्वरूप नहीं है। पानी में कंकड़ हजारों वर्ष इकट्ठे रहते हैं तो भी दोनों (पानी और कंकड़) भिन्न ही हैं। उसीप्रकार शरीर और आत्मा एकक्षेत्र संयोग से, संबंध की योग्यता से इकट्ठे रहते हुए दिखते हैं, लेकिन जड़देह और चेतन आत्मा दोनों का स्वभाव तीनों काल भिन्न-भिन्न है।

प्रत्येक आत्मा में ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, प्रभुत्व, विभुत्व आदि अनंत शक्तिरूप त्रिकाली गुण हैं। वे स्वयं के स्व लक्षण से त्रिकाल आत्मा के साथ रहते हैं, ऐसा ही आत्मा है। उसकी जानकारी न होने से स्वयं के शुद्ध अभंग त्रिकाल गुणस्वरूप को भूला है, इसलिये स्वरूप प्राप्ति का अभाव है। यह स्वतंत्र भिन्न होने पर भी अज्ञान द्वारा देहादि की ममता करता है और ममता में कारणरूप आहार, भय, मैथुन, परिग्रह संज्ञा है-इससे कर्मशरीर में रुका (अटका) रहता है। रागादि विभाव में रुचि कर पुण्य-पाप में आनंद मानता है। पुण्य से, शुभ व्यवहार से मुझे लाभ होगा—ऐसे पराश्रय विकार की प्रीतिरूप ममता होने से शरीर की ममता अज्ञानी नहीं छोड़ता।

दूसरे विद्यमान सत्पदार्थ स्वतंत्र हैं, ऐसा न मानता हुआ उनकी अवस्था को मैं बदल दूँ, मैं पर का कुछ कर सकता हूँ, पर मेरा सुधार-बिगाड़ कर सकता है, मैं भोजन वगैरह ले

सकता हूँ अथवा छोड़ सकता हूँ—इसप्रकार अज्ञानी को संयोग और विकार की एकत्व बुद्धि रहती है। चेतन भिन्न स्वतंत्र है, उसको भूल जाता है। इससे बाह्य परिग्रह की भावना पुण्य-पाप की भावना किया करता है। ज्ञानी को चारित्र की कमजोरी से भोजनादि संबंधी राग होता है, लेकिन उसमें एकत्वबुद्धिरूप आसक्ति नहीं है।

अज्ञानी दया, दान, पूजा, भक्ति, व्रतादि का शुभराग करके—अरे! हमने भारी धर्म किया, ऐसा करें तो जीवन सफल है-ऐसा मानता है। शुभभाव करने जैसा है, छोड़ने जैसा नहीं—ऐसी मान्यता को लेकर अज्ञानी जीव ने शरीर की प्राप्ति की है। शरीर जड़ है वह जीव को नहीं मिलता; लेकिन ज्ञातास्वभाव पृथक् है, ऐसा भान अज्ञानी भूला है, इससे विकार में, व्यवहार में तन्मयता करता है और इससे उसको शरीर मिलता है; अतीन्द्रिय ज्ञानानंद आत्मा नहीं मिलता-ऐसा कहा है। विकार की रुचिरूप आसक्ति से उस जीव ने शरीर नामकर्म उपार्जन किया, उसके विपाकोदय से छोटे-बड़े शरीरप्रमाण से वह मिथ्या-दृष्टि होता है।

जीव स्वतंत्र स्वभाव को भूलता है, तब विकार की रुचि करता है। शुभाशुभ विकार अरूपी है, उसमें जड़कर्म निमित्त है, उसके परिणामस्वरूप शरीर मिलता है। जीव सदा असंख्य प्रदेशी होने पर भी स्वयं की पर्याय की योग्यता से ही छोटे या बड़े शरीप्रमाण रहता है। ऐसा न माने उसको वस्तुस्वरूप की खबर (जानकारी) नहीं है। आत्मा नित्य अनंत गुण का पिंड शुद्धस्वभावी है, वही उपादेय है-आदरणीय है।

यह जीव द्रव्य के स्वरूप का वर्णन है। जीव स्वयं के छोटे-बड़े शरीर प्रमाण है। यह बात सर्वज्ञ भगवान के सिवाय दूसरों के मत में नहीं है। निश्चयनय से जीव त्रिकाल असंख्य प्रदेशी ही है, लेकिन समय-समय की योग्यता से उसमें संकोच-विस्तार होता है, ऐसा उसका स्वभाव है। एक प्रदेश तो ऐसा का ऐसा ही (अणु प्रमाण) रहता है, उसमें कुछ छोटा-बड़ा नहीं होता, असंख्य प्रदेशों में भी कमती-बढ़ती नहीं होती, लेकिन असंख्य प्रदेशों की अवगाहना में संकोच-विस्तार होता है, इससे जीव देहप्रमाण है। जीव का ऐसा ही स्वभाव है। संकोच-विस्तार क्यों होता है? तो कहते हैं कि ऐसा ही उसका स्वभाव है, कोई दूसरे के कारण से नहीं है। नामकर्म के कारण से संकोच-विस्तार होने का कहना वह तो निमित्त का कथन है। असंख्य प्रदेशी आत्मा की अंतर्मुखता से तेरा कल्याण होता है। कहीं पर सामने

देखना नहीं रहता। जीव अरूपीपदार्थ होने पर भी उसको भी संकोच-विस्तार होता है। यह सर्वज्ञ के अतिरिक्त दूसरा जान नहीं सकता। 'साधारण जीवों को जानना' तो यह बात कठिन हो जाती है। एक आत्मा निश्चय से असंख्य प्रदेशी और लेकिन व्यवहार से संकोच-विस्तार धर्म द्वारा देह प्रमाण है। यह जीव के धर्म की बात है, इस धर्म के पहिचाने बगैर जीव को पहिचाना नहीं कहा जाता।

लोटे में रहे हुए पानी का आकार लोटे जैसा होता है, वैसे ही जीव का आकार शरीर प्रमाण से होता है; वह शरीर के आकार अथवा कर्म के कारण नहीं होता। लेकिन जीव का स्वयं का ही वैसा संकोच-विस्तार होने का स्वभाव है। चींटी के शरीर समय वैसा आकार, और हाथी के शरीर समय वैसा आकार; तो भी वह आकार स्वयं के ही कारण से है, दूसरे के कारण से नहीं। आत्मा का एक-एक प्रदेश तो एक परमाणु जितना त्रिकाल है। सर्वज्ञ भगवान ने जैसा स्वभाव कहा वैसा स्वयं के ज्ञान में दिखना चाहिये।

जैसे दीपक बड़े बरतन में रखो तो उतने में उसका प्रकाश होता है, और छोटे स्थान में रखें तो उतने में उसका प्रकाश होता है; ऐसा संकोच-विस्तार होने का उसका स्वभाव है। उसीप्रकार जीव का ऐसा स्वभाव है कि जितना शरीर हो उतना उसका (जीव का) आकार स्वयं के कारण से होता है। किंतु शरीर प्रमाण आकार रहने में 'समुद्घात न होना' वह भी कारण है अर्थात् समुद्घात होता है, तब वह देह प्रमाण रहता नहीं है। समुद्घात न हो उस समय देह प्रमाण रहता है। *[क्रमशः]*

जो गृहस्थ हमेशा परम भक्ति से जिननाथ के दर्शन नहीं करता-अर्चन नहीं करता और स्तवन नहीं करता उसीप्रकार परम भक्ति से मुनिराजों को दान नहीं देता; उसका गृहस्थाश्रम पद पत्थर की नाव के समान है।

— पूज्य कानजीस्वामी : श्रावक धर्मप्रकाश, पृष्ठ १०४

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न– मात्र इतना ही अनुभव में आये तो इतनी श्रद्धा सम्यग्दर्शन है या नहीं ? दोनों अपेक्षाओं का प्रमाणज्ञान करें, फिर पर्यायदृष्टि गौण करें, निश्चयदृष्टि मुख्य करें—इतनी मेहनत करने के बदले—आत्मा चैतन्य है इतना मानने से सम्यग्दर्शन होगा या नहीं ?

उत्तर– नहीं, नास्तिकमत के सिवाय सभी मत वाले आत्मा को चैतन्यमात्र मानते हैं। यदि इतनी ही श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा जाये तो सबको सम्यक्त्व सिद्ध हो जायेगा। सर्वज्ञ वीतराग ने आत्मा का जैसा स्वतंत्र और पूर्ण स्वरूप कहा है-वैसा सत्समागम से जानकर, स्वभाव से निर्णय करके, उसका ही श्रद्धान करने से निश्चय सम्यक्त्व होता है। सर्वज्ञ को स्वीकार करनेवाले जीव ने यह निर्णय किया है कि अल्पज्ञ जीव अधूरी अवस्था के काल में भी सर्वज्ञ परमात्मा जैसा पूर्ण सामर्थ्यवान है। पूर्ण को स्वीकार करनेवाला प्रतिसमय पूर्ण होने की ताकत रखता है। परोक्षज्ञान में वस्तु के वर्तमान स्वतंत्र त्रिकाली अखंड परिपूर्णस्वरूप का निर्णय पूर्णता के लक्ष्य से ही होता है। शुद्धनय से ऐसा जानना निश्चय सम्यक्त्व है।

प्रश्न– धारणा का विषय तो आत्मा है या नहीं ?

उत्तर– बाहर के उघाड़ से होनेवाली धारणा का विषय आत्मा नहीं है। किंतु सम्यक्मतिज्ञान में आत्मा को जानकर जो धारणा हुई है, उसका विषय आत्मा है; इस धारणा से ज्ञानी पुनः पुनः आत्मा का स्मरण करता है।

प्रश्न– स्मरण होता है अर्थात् निर्विकल्प दशा हो जाती है ?

उत्तर– स्मरण ही निर्विकल्पता है। निर्विकल्प स्मरण में अतीन्द्रिय आनंद की माला फिरती है। इस निर्विकल्प स्मरण से मोह छूटता है; विकल्प से तो मोह छूट सकता नहीं।

प्रश्न– परलक्षी ज्ञान से तो आत्मा जानने में आता नहीं और अनादि मिथ्यादृष्टि के स्वलक्षी ज्ञान है नहीं–तो साधन क्या ? यह समझाइये।

उत्तर– राग से भिन्न पड़ना वह साधन है। प्रज्ञा–छैनी को साधन कहो अथवा अनुभूति को साधन कहो–यह एक ही साधन है।

प्रश्न– जीव शुद्धस्वरूपी है यह तो ठीक है; परंतु राग–द्वेष–मोह, सुख–दु:ख के परिणामों को करता कौन है ? और भोगता कौन है ?

उत्तर– जीव ही राग–द्वेष–मोह के परिणामों को करता है और सुख–दु:ख एवं हर्ष–शोक को भोगता है; किंतु वे विभाव परिणाम हैं, उपाधिभाव हैं, अत: जीव के स्वरूप का विचार करने पर वे जीव का स्व–रूप नहीं है–ऐसा कहा जाता है। तथा शुद्धस्वरूप के अनुभव में विभाव नहीं आता है, इसलिये स्वभावदृष्टि से विभाव आत्मा से भिन्न है।

प्रश्न– यदि राग से परद्रव्य में कोई फेर–फार नहीं कर सकते तो ज्ञानी जीव परद्रव्य में फेर–फार करने का राग क्यों करता है ?

उत्तर– राग से तो परद्रव्य में परिवर्तन–फेरफार हो सकता ही नहीं, फिर भी ज्ञानी को निर्बलता से राग आता है; तथापि उस राग का वह कर्ता नहीं होता, उसको ज्ञेय बनाकर ज्ञाता रहता है।

प्रश्न– ज्ञान में राग तो जाना जाता है, फिर भी ज्ञान में राग एकमेक हो गया हो ऐसा क्यों लगता है ?

उत्तर– भेदज्ञान के अभाव से अज्ञानी राग और ज्ञान की अति निकटता देखकर उन दोनों को एकमेक मान लेता है; परंतु राग और ज्ञान का एकत्व है नहीं।

प्रश्न– ज्ञानी सारे दिन शास्त्र–वाँचन, उपदेशादि करता हुआ दिखायी देता है; तो भी आप कहते हो कि ज्ञानी राग को नहीं करता–इससे क्या समझना चाहिये ?

उत्तर– राग आता है अवश्य; किंतु ज्ञानी तो उस राग का मात्र जाननेवाला है। आत्मा को जानता होने से स्व–पर प्रकाशक ज्ञान समय–समय पर होता है और उसी समय जो राग होता है, उसको भी जानता है, फिर भी उस राग का स्वामी नहीं होता। ज्ञानी राग को परज्ञेयरूप से जानता है; वास्तव में तो उस राग संबंधी जो अपना ज्ञान है, उस ज्ञान को

वह जानता है। ज्ञान में राग निमित्त है, किंतु राग का ज्ञान अपने में अपने से हुआ है और वह अपना कार्य है तथा उस समय होनेवाला राग वह अपना कार्य नहीं है–ऐसा ज्ञानी जानता है।

प्रश्न– विकारी पर्याय को द्रव्य से भिन्न और शुद्धपर्याय को द्रव्य से अभिन्न क्यों कहा जाता है ?

उत्तर– विकारी पर्याय परद्रव्य की सन्मुखता करती है, इसलिये विकार को द्रव्य से भिन्न कहा। और शुद्धपर्याय स्वद्रव्य के सन्मुख होती है, अतः शुद्धपर्याय को द्रव्य से अभिन्न कहा जाता है। उस अभिन्नता का अर्थ यह है कि द्रव्य की जितनी भी सामर्थ्य है–शक्ति है वह ज्ञानपर्याय में आ जाती है, प्रतीति में आ जाती है। इसलिये शुद्धपर्याय को द्रव्य से अभिन्न कहा गया है; किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि अनित्यपर्याय नित्यद्रव्य के साथ एकमेक हो जाती है। द्रव्य और पर्याय दोनों का स्वरूप ही भिन्न होने से दोनों भिन्न हैं। पर्याय द्रव्य का आश्रय करती है, लक्ष्य करती है, इसलिये पर्याय शुद्ध होती है; किंतु इससे द्रव्य–पर्याय का एकत्व हो जाता हो ऐसा नहीं है। दोनों का स्वरूप भिन्न होने से पर्याय द्रव्यरूप और द्रव्य पर्यायरूप कभी भी होना अशक्य है।

अशुद्धपर्याय (पर्यायार्थिकनय से) द्रव्य से अभिन्न है; इसलिये द्रव्य भी अशुद्ध है–ऐसा कोई कहे तो यह बात सत्य नहीं है। पर्याय अशुद्ध होने पर भी त्रिकाली द्रव्य कभी भी अशुद्ध होता ही नहीं, त्रिकाली द्रव्य तो शुद्ध ही है। विकार तो पर के लक्ष्य से होनेवाला द्रव्य की एक समय की अवस्था का भेष है और मोक्षमार्ग की पर्याय भी द्रव्य की एक समय की अवस्था का भेष है। अरे! सिद्धदशा भी एक समय की अवस्था का भेष है, वह भी त्रिकाली ध्रुव वस्तु नहीं है। यदि त्रिकाली द्रव्य की पर्याय अभिन्न ही हो तो विकारी और अविकारी पर्याय का अभाव होने पर द्रव्य का भी अभाव (नाश) हो जाये। किंतु द्रव्य तो पर्याय से कथंचित् भिन्न होने से त्रिकाल स्थायी है। समयसार के संवर अधिकार में तो विकार के प्रदेश को भी द्रव्य से भिन्न कहा है, क्रोधादि कषाय और ज्ञान के प्रदेश भिन्न–भिन्न हैं – ऐसा कहा है।

प्रश्न– कोई द्रव्य अपना स्वभाव नहीं छोड़ता है तो जीव संसारी कैसे ?

उत्तर– कोई द्रव्य अपना स्वभाव नहीं छोड़ता–इसका अर्थ है कि कोई भी द्रव्य अपने त्रिकाली स्वभाव को नहीं छोड़ता। वर्तमान दशा में विकारी दशा होती है, बंध अवस्था होती है, तो भी द्रव्य अपने त्रिकाली स्वभाव को छोड़ता नहीं है। बंध की अवस्था हो, मोक्षमार्ग की अवस्था हो अथवा मोक्ष हो; परंतु फिर भी वस्तु तो जैसी की तैसी पर्याय के पीछे तीनों काल मौजूद पड़ी है।

समाचार दर्शन

महावीर धर्मचक्र गुजरात का मंगल प्रवर्तन

महावीर धर्मचक्र गुजरात का चतुर्थ प्रवर्तन दिनांक २१–१०–७७ को हुआ। फतेपुर मोटा से चलकर यह धर्मचक्र गोरल तथा कल्याणपुर होता हुआ सायंकाल ५ बजे सेमारी पहुँचा। यहाँ पहुँचने पर राजस्थान के उद्योग मंत्री श्री त्रिलोकचंदजी जैन तथा अन्य प्रमुख साधर्मी बंधुओं ने धर्मचक्र का भव्य स्वागत किया। दिनांक २२–१०–७७ को प्रातः ८.३० पर धर्मचक्र उदयपुर पहुँचा। सारे नगर को आकर्षक ढंग से सजाया गया। रात्रि को १०.३० पर एक विशाल शोभायात्रा नगर के प्रमुख मार्गों से होती हुई सभास्थल पर पहुँची। उदयपुर से धर्मचक्र लकड़वास, कुरावड़, सकरोदा, महाराज की खेड़ी होते हुए भीलवाड़ा पहुँचा। यहाँ पर इस अवसर पर विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किये गये।

धर्मचक्र प्रवर्तन से गाँव–गाँव में अभूतपूर्व धर्म प्रभावना हुई। पूज्य कानजीस्वामी और उनके द्वारा प्रचारित तत्त्व के संबंध में अनेक भ्रांत धारणाएँ मिटीं। आत्मधर्म तथा जैनपथ प्रदर्शक के लगभग १००–१०० ग्राहक बनाये गये तथा लगभग ४००० रुपये का सत्साहित्य बिका। स्थान–स्थान पर धर्मचक्र का भावभीना स्वागत किया गया।

आदरणीय पंडित बाबूभाई मेहता, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित मणीभाई मुनाई, पंडित चन्दूभाई फतेपुर, पंडित उग्रसेनजी बण्डी आदि विद्वान

निरंतर धर्मचक्र के साथ रहे। समाज को सभी विद्वानों के मंगल प्रवचनों का लाभ मिला।

इस अवसर पर श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के लिये भारी योगदान प्राप्त हुआ। सेमारी से भीलवाड़ा तक लगभग १ लाख ७० हजार रुपये की स्वीकृति तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के लिये प्राप्त हुई।

इसके पश्चात धर्मचक्र बीनोता, बोयडा, लूड़दा, कूंण, कानोड़, भीण्डर, बागीदौरा, कुशलगढ़ तथा दाहौद होता हुआ दिनांक ८-११-७७ को वापिस फतेपुर पहुँचेगा।

— उग्रसेन बण्डी

वीतराग-विज्ञान शिक्षण-शिविर सानंद संपन्न

मौ - दिनांक १३-१०-७७ को अध्यात्म प्रवक्ता माननीय पंडित बाबूभाई मेहता ने यहाँ सप्तम वीतराग-विज्ञान शिक्षण-शिविर का उद्घाटन किया। इस अवसर पर पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, ब्रह्मचारी हेमराजजी, पंडित देवीलालजी आदि विद्वानों के तात्त्विक प्रवचनों का तथा शिक्षण कक्षाओं का आयोजन किया गया। कक्षाओं में छहढाला, लघु जैनसिद्धांत प्रवेशिका तथा द्रव्यसंग्रह का अध्ययन कराया। बालक-बालिकाओं ने बालबोध पाठमालाओं की कक्षाओं से लाभ लिया। समाज ने पूज्य गुरुदेव के प्रति कृतज्ञता प्रकट की।

— शांतिकुमार जैन

श्रीमान् पंडित बाबूभाई मेहता द्वारा प्रभावना

विगत दिनों श्री पंडित बाबूभाई मेहता जबलपुर, शाहपुरा, मंडला, जवेरा, खुरई, विदिशा, इटारसी, बीना, मौ, ग्वालियर आदि अनेक स्थानों पर पधारे। सभी स्थानों पर आपके आध्यात्मिक प्रवचनों की मंगलवर्षा हुई, जिससे समाज में महती धर्मप्रभावना हुई। आत्मधर्म तथा जैनपथ प्रदर्शक के भारी संख्या में ग्राहक बनाये गये थे। श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के लिये लगभग ६५ हजार की स्वीकृति प्राप्त हुई। **— पंडित ज्ञानचंद जैन**

बीना - विगत दिनों अध्यात्म प्रवक्ता श्री पंडित बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता पधारे। आपके तीन दिन तक हुए ७-८ प्रवचनों में उपस्थित होकर समाज ने अपूर्व धर्म लाभ लिया। आपके आध्यात्मिक वैराग्यपूर्ण प्रवचनों से समाज गद्गद् हो गई तथा सोनगढ़ के प्रति फैली हुई अनेक भ्रांतियाँ दूर हुईं। स्थानीय समाज ने श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के लिये

लगभग पचास हजार रुपये दान देने की घोषणा की। इस अवसर पर आपके साथ श्री पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा वाले भी पधारे। **— बाबूलाल जैन 'मधुर'**

मण्डला – समाज के विशेष आग्रह एवं अनुरोध पर श्री पंडित बाबूभाई मेहता तथा श्री पंडित ज्ञानचंदजी विदिशावाले पधारे। समाज ने दोनों विद्वानों के मार्मिक प्रवचनों से लाभ लिया। आप लोगों की प्रेरणा से वीतराग-विज्ञान पाठशाला प्रारंभ करने का निर्णय लिया गया तथा मुमुक्षु मंडल की स्थापना हुई। **—डॉ० इंद्रकुमार गोयल**

नवीन वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ

समिति के निरीक्षक श्री पंडित गोविंदप्रसादजी जैन ने पर्यूषण पर्व के पश्चात् राजस्थान प्रांत के उदयपुर, भीलवाड़ा जिलों और उसके एरिया में चल रहीं पाठशालाओं का निरीक्षण किया। उदयपुर, झाड़ोल, बल्लभनगर की पाठशालाएँ तीन-चार महा से बंद थीं; अत: समाज को प्रेरणा देकर उन्हें पुन: चालू कराईं और खेड़ी, भिंडर, साकरोदा, सेमारी में नवीन पाठशालाएँ खुलीं। कुरावड़, टोकर और भावनगर (गुजरात) की पाठशालाएँ अच्छी तरह चल रही हैं। उनका कार्य संतोषजनक पाया गया।

प्राय: सभी पाठशालाओं में बच्चे नये भागों की पढ़ाई के प्रति बड़े ही उत्साही और लगनशील पाये गये। **— मंत्री, भा० वी० वि० पाठशाला समिति**

वीतराग-विज्ञान पाठशाला का भव्य उद्घाटन

बड़ौत (उ०प्र०) – यहाँ दिनांक २१-१०-७७ को वीतराग-विज्ञान पाठशाला का उद्घाटन उपाध्याय मुनि श्री विद्यानंदजी ने बच्चों को बालबोध पाठमाला भाग १ का प्रथम पाठ 'णमोकारम मंत्र' पढ़ाकर किया। इस अवसर पर धर्माध्यापक श्री सुमतप्रसादजी द्वारा बालबोध पाठमाला के आधार पर तैयार किये गये रोचक एकांकी छात्रों द्वारा प्रस्तुत किये गये। **— शिखरचंद जैन**

घौरा – ब्रह्मचारी श्री नित्यानंदजी के तत्त्वावधान में ४५ दिवसीय आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया। इस अवसर पर श्री पंडित महेन्द्रकुमारजी बरायठा भी कुछ दिनों के लिये पधारे। प्रतिदिन तीनों समय निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान, चार अनुयोग, भेदविज्ञान, अनेकांत और स्याद्वाद तथा द्रव्य-गुण-पर्याय आदि विषयों पर

सारगर्भित प्रवचन होने से समाज में नई चेतना उत्पन्न हुई। वर्णी स्वाध्याय मंडल की स्थापना की गयी। आत्मधर्म तथा जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक भी बनाये गये। अनेक भाइयों ने सोनगढ़ शिविर में तथा ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण शिविर में जाने की इच्छा व्यक्त की। श्री सेठ डालचंदजी सागर द्वारा महिला सिलाई केंद्र का उद्घाटन हुआ। **— चौ० शीतलचंद जैन**

कुरावली – यहाँ ३ अक्टूबर से १३ अक्टूबर तक कक्षायें चलायी गयीं। इसमें श्री पंडित धन्नालालजी ग्वालियर तथा श्री पंडित रवीन्द्रकुमारजी कुरावली ने सुचारु रूप से कक्षाओं का संचालन किया। प्रातः ६ से ७ तक लघु जैनसिद्धांत प्रवेशिका, ९ से १० तक छहढाला, अपराह्न २ से ३ तक मोक्षमार्ग प्रकाशक तथा रात्रि ८ से ९ तक समयसार कलश पर कक्षायें चलाती थीं। **— केशवचंद जैन**

भोपाल – श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय में प्रवेश पाने हेतु ब्रह्मचारी श्री अभिनंदनकुमारजी ने यहाँ से जयपुर के लिये प्रस्थान किया। इस अवसर पर उनकी निस्पृह सेवाओं का उल्लेख करते हुए अनेक गणमान्य व्यक्तियों ने उन्हें भावभीनी विदाई दी। **— बाबूलाल जैन**

आवश्यक सूचनायें

(१) मध्यप्रदेश तथा राजस्थान के स्कूलों में दशहरा-दीपावली का अवकाश हो जाने के कारण श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की फरवरी १९७८ में ली जानेवाली परीक्षाओं में सम्मिलित होने के लिये फार्म भरने की अंतिम तिथि बढ़ा दी गयी है। बढ़ाई गयी तिथि के अनुसार अब बिना लेट फीस के दिनांक २०-११-७७ तक और इसके उपरांत १० पैसा प्रति फार्म लेट फीस लेकर दिनांक ३०-११-७७ तक फार्म स्वीकार किये जा सकेंगे। **— मंत्री, परीक्षा बोर्ड**

(२) डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा लिखित सत्य की खोज (भाग १) का प्रथम संस्करण समाप्त हो चुका है। अब उसका दूसरा संस्करण इसी माह में छपकर आ रहा है। जिन बंधुओं को अभी तक 'सत्य की खोज' प्राप्त नहीं हो सकी हो वे धैर्य रखें। छपने पर क्रमशः भेजने की व्यवस्था की जावेगी। **— प्रबंधक, विक्रय विभाग, श्री टोडरमल स्मारक भवन**

(३) मनिऑर्डर से रकम भेजनेवाले सज्जनों से प्रार्थना है कि वे मनिऑर्डर फार्म पर

संदेश के साथ-साथ अपना पूरा नाम व पूरा पता अवश्य लिखें। तथा यह रुपया किस मद में भेजा गया है, यह भी अवश्य लिखें। **— मंत्री, पंडित टोडरमल स्मारक भवन**

महापर्व दशलक्षण समाचार

[गतांक से आगे]

जवेरा - दशलक्षण महापर्व उत्साहपूर्वक मनाया गया। प्रातः ५ बजे से रात्रि के १० बजे तक धार्मिक कार्यक्रम चलते थे। श्री लखमीचंदजी व्याख्याता एवं पंडित विनोदकुमारजी के सारगर्भित प्रवचन चलते थे। पर्यूषण पर्वोपरांत सर्वश्री पंडित बाबूभाई मेहता, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा तथा पंडित केसरीचंदजी 'धवल' भी पधारे। आप लोगों के आध्यात्मिक प्रवचनों से जैन-जैनेतर समाज ने अपूर्व धर्मलाभ लिया। श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट हेतु महत्त्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। **— डॉ० हुकमचंद जैन**

गंजबासौदा - पर्यूषण पर्व पर श्री तारण-तरण दिगम्बर जैन चैत्यालय, घूसरपुरा में श्री पंडित कस्तूरचंदजी बेगमगंजवालों के पधारने से महती धर्मप्रभावना हुई। छहढाला, ज्ञान सम्मुचयसार तथा दशधर्मों पर आपके सारगर्भित प्रवचन हुए। आत्मधर्म के २५ ग्राहक बनाये गये। **— गयाप्रसाद जैन**

वाशीम - पर्यूषण पर्व में श्री पंडित धर्मदासजी बड़ौत द्वारा ग्रंथराज समयसार तथा मोक्षमार्ग प्रकाशक पर गंभीर एवं मार्मिक प्रवचन हुए। बालक-बालिकाओं द्वारा दशधर्मों पर भाषण आयोजित किये गये। **— मंत्री, जैन नवयुवक मंडल**

भावनगर - पर्यूषण पर्व में श्री पंडित हीराभाई भीखाभाई पधारे। प्रातः समयसार पर तथा रात्रि में पूज्य बैनश्री के वचनामृत के बड़े ही मार्मिक प्रवचन होते थे। आपकी शैली सभी को पसंद आयी। प्रतिदिन प्रवचनों के उपरांत वी०वि० पाठशाला के छात्रों द्वारा संवाद प्रस्तुत किये गये। **— सरोज गाँधी**

सिंगोड़ी - श्री पंडित देवेन्द्रकुमारजी के प्रवचनों से अच्छी धर्म प्रभावना हुई। रात्रि में ८ बजे से ९ बजे तक लघु जैनसिद्धांत प्रवेशिका तथा प्रवेश रत्नमाला पर कक्षायें चलती थीं। समाज ने बड़े उत्साह से धर्मलाभ लिया।

बेगमगंज - पर्यूषण पर्व पर ब्रह्मचारी श्री आत्मानंदजी पधारे। प्रतिदिन प्रातः ५ बजे से

रात्रि १० बजे तक तत्त्वार्थसूत्र, छहढाला, पूज्य चंपाबैन के वचनामृत तथा दशधर्मों पर आपके आध्यात्मिक प्रवचनों चलते थे। समाज में अच्छा धर्मलाभ हुआ। **— कस्तूरचंद जैन**

ऐत्मादपुर – दशलक्षणपर्व के पश्चात् ललितपुर से लौटते हुए स्थानीय जैन समाज के पूर्व विशेष निवेदन पर आध्यात्मिक विद्वान श्री पंडित धन्नालालजी पधारे। तीन दिन तक आपके अमृत वचनों की वर्षा होती रही। जिज्ञासु समाज ने तत्त्वज्ञान का लाभ लिया। **— अभयकुमार जैन, मंत्री**

जलगाँव – दशलक्षण पर्व पर श्री डॉ० प्रियंकर यशवंत जैन पधारे। आपके प्रतिदिन मोक्षमार्ग प्रकाशक, समयसार, रत्नकरंड श्रावकाचार तथा दशधर्मों पर बहुत ही गंभीर प्रवचन हुए। समाज ने अच्छी संख्या में उपस्थित होकर धर्मलाभ लिया। **— नटवरलाल केशवलाल शाह**

आरोन – पर्वराज पर्यूषण में पंडित हरिप्रसादजी शास्त्री इंदौर द्वारा दशधर्म, निश्चय-व्यवहार, तत्त्वार्थसूत्र, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, समयसार आदि विषयों पर प्रभावी ढंग से प्रवचन हुए। आत्मधर्म के सदस्य भी बनाये गये। **— विजय कोछल**

❀*✪* ❀*✪* ❀*✪*

पाठकों के पत्र

रमणिया (राज०) से मुनि श्री माणिकविजयजी लिखते हैं –

आत्मधर्म के प्रत्येक पेज अत्यंत कीमती हैं। इसके प्रति मैं अपनी हार्दिक शुभकामना व्यक्त करता हूँ।

बम्बई (शिवडी) से श्री ब्रजलालजी जैन लिखते हैं –

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी गन्ने के रस से भी ज्यादा मीठी एवं स्वादिष्ट है। गन्ने के रस के तो दो गिलास पी लेने पर उसे और पीने की इच्छा नहीं होती, परंतु पूज्य गुरुदेव की रसरूपी वाणी को घड़े के घड़े पी लेने पर भी तृप्ति नहीं होती।

सिवनी (म०प्र०) से श्री रूपलालजी जैन लिखते हैं–

आत्मधर्म पत्र के भीतर यथार्थ में आत्मा के धर्म की बात परिलक्षित होती है। पूज्य स्वामीजी की वार्तालाप एवं उनके द्वारा समय-समय पर दिये गये प्रवचनों का उल्लेख इतना आकर्षक एवं

हृदयग्राही होता है कि शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। आपके द्वारा किये गये प्रयास से सामाजिक भ्रांति अवश्य दूर होगी एवं भगवान महावीर की ज्ञान-गंगा का प्रवाह जो कि पूज्य स्वामीजी के माध्यम से हो रहा है, अविरुद्ध गति से चलता रहेगा।

उज्जैन (म०प्र०) से श्री डॉ० हरीन्द्रभूषणजी जैन, प्राध्यापक, विक्रम विश्वविद्यालय लिखते हैं-

आत्मधर्म के संपादकीय में आदरणीय 'कानजीस्वामी से एक और इन्टरव्यू : अब हम क्या चर्चा करें' खूब पसंद आया। आपके संपादकत्व में आत्मधर्म की निरंतर प्रगति हो रही है।

सागर (म०प्र०) से श्री ताराचंदजी सर्राफ लिखते हैं-

आत्मधर्म में जिनागम के चारों अनुयोगों का सार भरकर हिन्दुस्तान के कौने-कौने में आपने अध्यात्म की गंगा बहा दी और स्वामीजी के आध्यात्मिक प्रवचनों का सूक्ष्म तत्त्व घोलकर घर-घर तक पहुँचा दिया। जो विद्वान अध्यात्म ग्रंथों का पठन-पाठन नहीं करते थे, वे भी सतर्क होकर अध्ययन करने लगे; भले ही द्वेष बुद्धि से अर्थ का अनर्थ करें, लेकिन सत्यता उनके अंदर भी बोलने लगी।

जयपुर (राज०) से श्री सूरजमलजी जैन लिखते हैं-

माह सितंबर का आत्मधर्म बहुत प्रतीक्षा के बाद प्राप्त हुआ। यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आत्मधर्म के मुखपृष्ठ पर आचार्यकल्प पंडितप्रवर टोडरमलजी का चित्र भी प्रकाशित करना आरंभ कर दिया है। आत्मधर्म में उत्तम क्षमादि धर्म पर क्रमशः तथ्यात्मक, रोचक एवं सरल भाषा में प्रकाशित लेख अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। इनसे निश्चित ही पाठकों एवं समाज को सही दिशा मिलेगी।

बाराँ (राज०) से श्री हजारीलालजी बज लिखते हैं-

मैं १३ वर्ष से आत्मधर्म का अध्ययन करता हूँ। लेकिन गत वर्ष से आपके संपादकत्व में आ जाने से आध्यात्मिक प्रवचन बड़ी सरलता से समझ में आने लगे हैं। आत्मधर्म के अंक बार-बार पढ़ने पर भी उसके पढ़ने की रुचि बनी रहती है और यह इंतजार बना रहता है कि कब दूसरा अंक प्राप्त हो। ज्ञान-गोष्ठी व दशधर्म के विवेचनों से आत्मधर्म बहुत ही रोचक बन गया है। साथ ही शंकाओं का समाधान भी होता रहता है।

प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें :—

(१) कुछ पुराने ग्राहकों ने अभी तक इस वर्ष का आत्मधर्म का चंदा नहीं भेजा है। अत: उन सदस्यों के पास मनिआर्डर फार्म भेजे जा रहे हैं। कृपया तुरंत शुल्क भेजने की कृपा करें।

(२) इस वर्ष आत्मधर्म के सभी ग्राहकों को लगभग ५) रुपये के मूल्य की पुस्तक भेंटस्वरूप भेजी जायेगी। अत: अधिक से अधिक लोग आत्मधर्म के ग्राहक बनकर इस योजना का लाभ उठावें।

(३) पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नंबर अवश्य लिखें।

(४) ग्राहक नं० ५६०५ के बाद के ग्राहक नं० बदल दिये हैं। अत: अब अपना नया ग्राहक नं० आत्मधर्म पर चिपकी हुई स्लिप से देखकर नोट करने का कष्ट करें।

(५) जिन सज्जनों के पास जुलाई तथा अगस्त के आत्मधर्म डबल पहुँच गये हों वे कृपया वापस भेजने का कष्ट करें। हमारे पास ये अंक समाप्त हो चुके हैं तथा हमें नये ग्राहकों को ये अंक भेजने हैं।

बिना मूल्य मंगा लें

मंदिरों, पुस्तकालयों, पूज्य मुनिराजों और त्यागियों के लिये डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा लिखित 'सत्य की खोज' नामक कथानक (पृष्ठ संख्या १०८ : मूल्य २ रुपये) तथा अर्चना (पूजन संग्रह : मूल्य ४० पैसे) मात्र तीस पैसे पोस्टेज टिकिट भेजकर बिना मूल्य मंगा लें।

संपर्कसूत्र - श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

आवश्यकताएँ

आवश्यकता है एक ऐसे धर्म अध्यापक की, जो बालकों को वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड की पाठ्यपुस्तकें पढ़ा सके। पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट से प्रशिक्षित अध्यापक ही आवेदन करें। वेतन योग्यतानुसार। आवास, पानी तथा बिजली की फ्री सुविधा रहेगी।

— लक्ष्मीचंद, बी. कॉम. द्वारा कमल कटपीस सेंटर
बजरिया बीना, जिला सागर (म.प्र.)

आवश्यकता है एक ऐसे धर्म अध्यापक की, जो पाठशाला के बच्चों को पढ़ाने के साथ-साथ पूजा का कार्य भी कर सके। पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट से प्रशिक्षित अध्यापक को प्राथमिकता दी जावेगी। वेतन योग्यतानुसार। **— मंत्री, श्री दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल**, बोटाद (गुजरात)

सब कुछ आत्मा में ही है

सम्माननीय पूज्य बहिनश्री चंपाबेन द्वारा समय-समय पर अभिव्यक्त विचार-बिंदु जिज्ञासु पाठकों की सेवा में यहाँ प्रस्तुत हैं।

१. सब कुछ आत्मा में ही है, बाहर कुछ भी नहीं है। तुझे कुछ भी जानने की इच्छा होती हो तो तू अपने आत्मा की साधना कर। पूर्णता प्रगट होने पर उसमें लोकालोक ज्ञेयरूप से ज्ञात होगा। जगत, जगत में रहे तथापि केवलज्ञान में सब कुछ ज्ञात होता है। जाननेवाला पूर्णरूप से परिणमे तो उसके ज्ञान के बाहर कुछ भी नहीं रहता और साथ ही साथ आनंद आदि अनेक नवीनताएँ प्रगट होती हैं।

२. **एक आत्मा का ही प्रयोजन रखना चाहिये। आत्मा का रस लगने पर विभाव का रस छूट जाता है।**

३. स्वरूप की लीला ही जुदी जाति की है। मुनिराज चैतन्य के बाग में खेलते-खेलते कर्मफल का नाश करते हैं। बाह्य आसक्ति को तोड़कर स्वरूप में लीन हो गये हैं। स्वरूप ही उनका आसन, स्वरूप ही निद्रा, स्वरूप ही आहार है। वे स्वरूप में ही क्रीड़ा करते हैं, स्वरूप में ही विचरण करते हैं। संपूर्ण श्रामण्य प्रगट करके वे लीलामात्र में श्रेणी चढ़कर केवलज्ञान प्रगट करते हैं।

४. **'मैं तो उदासीन ज्ञाता हूँ' ऐसी निवृत्त दशा में ही शांति है। स्वयं अपने को जाने और पर का अकर्ता हो तो मोक्षमार्ग की धारा प्रगट हो और साधक दशा आरंभ हो।**

५. मैं तो निर्लिप्त चैतन्यदेव हूँ। चैतन्य का जन्म-मरण नहीं होता। चैतन्य तो सदा चैतन्य ही है। नवीन तत्त्व प्रगट हो तो जन्म कहलाये। चैतन्य तो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से चाहे जैसे उदय में सदा अलिप्त ही रहता है, फिर चिंता कैसी? मूलतत्त्व में कुछ प्रविष्ट हो ही नहीं सकता।

६. **रोग-मूर्ति शरीर के रोग तो पौद्गलिक हैं, आत्मा से सर्वथा भिन्न हैं। संसाररूपी रोग आत्मा की पर्याय में है। 'मैं ज्ञायक मूर्ति हूँ'—ऐसी चैतन्य भावना, यही झुकाव, यही मनन, यही मंथन और ऐसी ही स्थिर परिणति से संसार रोग नष्ट होता है।**

७. संसार की अनेक अभिलाषारूप क्षुधा से दुखित मुसाफिर! तू विषयों में क्यों उछल-कूद करता है? वहाँ तेरी भूख शान्त नहीं होगी। अंतर में अमृत-फलों का चैतन्य वृक्ष लगा है, उसे देख तो अनेक प्रकार के मधुर फल और रस तुझे प्राप्त होंगे, तू तृप्त-तृप्त हो जायेगा।

८. **पर-पदार्थ को जानने से ज्ञान में उपाधि नहीं आ जाती। तीन काल-तीन लोक को जानने से सर्वज्ञता ज्ञान की परिपूर्णता सिद्ध होती है। जो वीतराग हो उसे ज्ञानस्वभाव की परिपूर्णता प्रगट होती है।**

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन *

मोक्षशास्त्र	१२-००	जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००
समयसार	१२-००	मोक्षमार्गप्रकाशक	प्रेस में
समयसार पद्यानुवाद	०-७०	पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	१०-००
समयसार कलश टीका	६-००	तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	५-००
प्रवचनसार	१२-००	'' '' (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)	२-००
पंचास्तिकाय	७-५०	मैं कौन हूँ?	१-००
नियमसार	५-५०	तीर्थंकर भगवान महावीर	०-४०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०	वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	०-२५
अष्टपाहुड़	१०-००	अपने को पहचानिए	०-५०
समयसार नाटक	७-५०	अर्चना (पूजा संग्रह)	०-४०
समयसार प्रवचन भाग १	प्रेस में	मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)	०-५०
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में	पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य	०-६५
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००	कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य	०-३०
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००	सत्तास्वरूप	१-७०
आत्मावलोकन	३-००	सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १	प्रेस में
श्रावकधर्म प्रकाश	प्रेस में	अनेकांत और स्याद्वाद	०-३५
द्रव्यसंग्रह	१-५०	युगपुरुष श्री कानजीस्वामी	१-००
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०	वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	३-००
प्रवचन परमागम	२-५०	सत्य की खोज (भाग १)	२-००
धर्म की क्रिया	२-००		
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०		
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०		
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०		
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००		
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०		
वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	१-००		
बालपोथी भाग १	०-२५		
बालपोथी भाग २	प्रेस में		
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००		
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०		
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०		
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०		
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०		
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००		
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००		
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	प्रेस में		
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५		

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४